वार्षिक रु. ८० मूल्य रु. १०

विवेक ज्योति

वर्ष ५३ अंक ६ जून २०१५

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जून २०१५

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५३
अंक ६

वार्षिक ८०/– **एक प्रति १०/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ३७०/–

आजीवन (२० वर्षों के लिए) – रु. १,४००/–

(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –

वार्षिक ११०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ५००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

यह 'स्वामी विवेकानन्द रथ' है, जिसे स्वामी विवेकानन्द जी की १५०वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में बेलूड़ मठ द्वारा भारत-भ्रमण के लिए प्रेषित किया गया था । रथ में पाँच घोड़े हैं । रथ में सामने की ओर स्वामी विवेकानन्द जी की ९ फिट ऊँची खड़ी मूर्ति है और पीछे की ओर ५ फिट की ध्यानस्थ मूर्ति है । यह रथ भारत के विभिन्न राज्यों का भ्रमण करते हुए १ जनवरी, २०१४ को छत्तीसगढ़ में खैरागढ़ मार्ग से प्रवेश किया और छत्तीसगढ़ के विभिन्न स्थानों – कवर्धा, धमदा, भिलाई, दुर्ग, राजनांदगाँव, नारायणपुर, जगदलपुर, कांकेर, धमतरी, रायपुर, बिलासपुर, चाँपा, कोरबा, कठघोरा, अम्बिकापुर, बगीचा, जशपुर होते हुए बिहार की ओर प्रस्थान किया । रथ और रथस्थ स्वामीजी की मूर्ति अपने सौन्दर्य के कारण सर्वत्र आकर्षण और प्रेरणा के केन्द्र बने रहे ।

आवरण सज्जा – स्वामी अनुग्रहानन्द, रायपुर

सम्पादक महोदय से मुझे भी कुछ कहना है

परम श्रद्धेय सम्पादक जी महाराज,

सादर प्रणाम व चरण स्पर्श।

विदित हो कि सितम्बर व अक्टूबर के अंकों में बेलूड़ मठ व दर्शनीय स्थलों के रंगीन चित्र देखकर आनन्द की अनुभूति हुई। आशा करते हैं कि स्वामीजी के 'पैतृक आवास', वेदान्त मठ तथा काकुड़गाछी, आश्रम के चित्र भी भविष्य में प्रकाशित होंगे। सितम्बर, २०१८ में 'शिकागो धर्म महासभा १८९३' को १२५ वर्ष तथा '१९९३ की धर्म महासभा' के २५ वर्ष पूर्ण हो जाएँगे। विनम्र निवेदन है कि दोनों धर्म महासभाओं के उपलक्ष्य में सचित्र विशेषांक प्रकाशित करने की भविष्य में कृपा करेंगे। ...विशेषांक पर यदि उचित समझें, तो 'रजत जयन्ती शताब्दी' अंकित किया जा सकता है।

किसी स्मरणीय घटना के २५ वर्ष पूरे होने पर 'रजत जयन्ती, ५० वर्ष में स्वर्ण जयन्ती, ६० वर्ष में हीरक जयन्ती, ७५ वर्ष में कौस्तुभ जयन्ती, १०० वर्ष में शताब्दी क्रमश: १२५ वर्ष में रजत जयन्ती सदी, १५० वर्ष में सार्धशती जयन्ती, १६० वर्ष में हीरक जयन्ती सदी, १७५ वर्ष में 'कौस्तुभ जयन्ती सदी, मनायी जानी चाहिए। स्वामीजी की सार्धशती जयन्ती अभी इसी वर्ष सम्पन्न हुयी है।

पूज्य स्वामी सारदानन्द (जन्म २३ दिसम्बर, १८६५), पूज्य स्वामी अभेदानन्द (२ अक्टूबर), १८६६ तथा भगिनी निवेदिता (२८ अक्टूबर, १८६७), की सार्ध शती क्रमश: दिसम्बर, २०१५, अक्टूबर २०१६ तथा अक्टूबर, २०१७ में पड़ेगी। हमारा निवेदन है कि यदि सम्भव हो, तो उक्त अवसर पर भविष्य में इन महान त्यागी संन्यासियों के विचारों, व्याख्यान, मिशन में योगदान तथा सेवाकार्यों व संस्मरणों से विवेक ज्योति के पाठकों को अवगत कराने की कृपा करें।... स्वामीजी के कुछ गुरुभाइयों की १५०वीं जयन्ती भविष्य में आनेवाली है, जो नाम मुझे मिले, उनका विवरण है – स्वामी त्रिगुणातीतानन्द (जन्म ३० जनवरी, १८६५) स्वामी सुबोधानन्द (८ नवम्बर, १८६७), स्वामी अखण्डानन्द (३० जनवरी, १८६८), स्वामी विज्ञानानन्द (३० अक्टूबर, १८६८) ब्रह्मलीन संन्यासियों के चित्र भी लेख के साथ प्रकाशित हो तो अच्छा रहेगा। जो सुझाव व्यावहारिक दृष्टि से उचित हो, उसी पर ध्यान दें, त्रुटियों के लिए क्षमा चाहता हूँ।

– सम्मानीय श्रीवास्तव जी, आपके प्रासंगिक सुझावों हेतु धन्यवाद। बेलूड़ मठ से भी मनाने का निर्देश मिला है। हम अपनी सुविधा और क्षमतानुसार विवेक ज्योति में सामग्री देने का प्रयास करेंगे। – सम्पादक

जून माह के जयन्ती और त्योहार

०२ कबीर जयन्ती

कबीर पदावली

नहीं छाड़ौं बाबा रांम नांम,
मोहि और पढ़न सूं कौन कांम ।।टेक।।
प्रह्लाद पधारे पढ़न साल,
संग सखा लीयें बहुत बाल ।
मोहि कहा पढ़ावै आल जांल,
मेरी पाटी मैं लिखि दे श्रीगोपाल ।।
तब सनां मुरकां कह्यों जाइ,
प्रहिलाद बंधायौ बेगि आई ।
तू राम कहन की छाड़ि बांनि,
बेगि छुड़ाऊँ मेरौ कह्यौ मांनि ।।
मोहि कहा डरावैं बार बार,
जिनि जल थल गिर कौ कियौ प्रहार ।
बांधि मारि भावै देह जारि,
जे हूँ राम छाड़ौं तौ मेरे गुरहि गारि ।।
तब काढ़ि खड़ग कौप्यौ रिसाइ,
तोहिं रांखनहारौ मोहि बताइ ।
खंभा मैं प्रगट्यौ गिलारि,
हरनाकस मारयौ नख बिदारि ।।
महापुरुष देवाधिदेव,
नरस्यंघ प्रकट कियौ भगति भव ।
कहै कबीर कोई लहै न पार,
प्रहिलाद ऊबारियौ अनेक बार ।।

पुरखों की थाती

प्रत्याख्याने च दाने च सुख-दुःखे प्रियाप्रिये ।
आत्मौपम्येनपुरुषः प्रमाणमधिगच्छति ।।४५३।।

– त्याग, दान, सुख-दुःख और रुचि-अरुचि में व्यक्ति स्वयं से तुलना करके ही दूसरों के भाव की धारणा करता है।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ।।४५४

– जो व्यक्ति पराई स्त्री को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढेले की भाँति और सब प्राणियों के सुख-दुःख को अपने ही समान जानता है, वही सच्चा ज्ञानी है।

प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे ।
अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी ।।४५५

– निरन्तर गाली दे रहे शिशुपाल को भगवान श्रीकृष्ण ने कोई भी उत्तर नहीं दिया था। क्योंकि सिंह मेघ का गर्जन सुनकर ही दहाड़ता है, सियारों की आवाज सुनकर नहीं।

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम् ।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः
सर्वं खलस्य चरितं मशकं करोति ।।४५६।।

– दुष्ट के सारे लक्षण मच्छर में मिल जाते हैं। पहले तो वह पैरों पर गिरता है, फिर पीठ का मांस खाता है और कानों के पास विचित्र ढंग से मीठी गुंजार करता है और छिद्र देखकर निडर होकर भीतर घुस जाता है।

विविध भजन

केवल एक प्रणाम कर पाऊँ

मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा

केवल एक प्रणाम कर पाऊँ ।
जप-तप कुछ भी हो नहीं पाता, कैसे तुम्हें बताऊँ ।।
तुम आये भक्तों के कारण, करने उनके कष्टनिवारण,
मैं भी उनमें शामिल होकर, निशादिन तुम्हें सताऊँ ।।
केवल एक प्रणाम कर पाऊँ ।।
मुझ-से अगणित तारे नभ में, तुम-सा केवल एक चन्द्र है,
मैं चातक बन तुम्हें निहारूँ, नाम तुम्हारा मुक्ति मंत्र है,
इस जग के पथरीले पथ पर, पग-पग ठोकर खाऊँ ।।
केवल एक प्रणाम कर पाऊँ।।
तुम दीनों के दुःखहर्ता हो, मुझसा दीन कौन है दूजा,
नहीं जानता प्रीति तुम्हारी, नहीं जानता जप-तप पूजा,
मेरी विनय सुनो करुणामय, हृदय खोल दिखलाऊँ ।।
केवल एक प्रणाम कर पाऊँ ।।
हृदय खोल जो भी आएगा, भक्ति तुम्हारी वह पायेगा
सुना एक प्रणाम करने से, वह तो सोना बन जाएगा,
सुनकर ऐसी आशावाणी, साहस से भर जाऊँ ।।
केवल एक प्रणाम कर पाऊँ।

मैं कब हरिदर्शन पाऊँगा !

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

मैं कब हरिदर्शन पाऊँगा !
मैं कब प्रभु को पाकर के, ईश्वरधाम को जाऊँगा ।।
कब मिटेगी मन की भ्रान्ति, कब पाऊँगा उर में शान्ति ।
मैं कब प्रभु-प्रेम में पागल होकर अश्रुधार बहाऊँगा ।।
यह भव सागर दुस्तर अपार, जीवन बीता पाया असार ।
कब सार प्रभु को पाकर के निज जनम-मरण छुड़ाऊँगा ।।
कब प्राण प्रभु मेरे आएँगे, निज दर्शन दिव्य कराएँगे ।
कब उनकी गोद में आश्रय ले, पी अमृत शान्ति पाऊँगा ।।
मुझमें न साधना की शक्ति, न ज्ञान-योग और विरक्ति ।
मैं कब केवल प्रभु भक्ति में, अपना सर्वस्व लुटाऊँगा।।
मैं कब केवल प्रभु चरणों में स्व जीवन सुमन चढ़ाऊँगा ।।
मैं कब हरिदर्शन पाऊँगा !

मेरी विनती सुनो बनवारी

तारा दत्त जोशी, पैटना, नैनीताल

मेरी विनती सुनो बनवारी ! हे गोवर्धन गिरिधारी ।।
मेरी विनती सुनो बनवारी !
यह मन तेरा, यह तन तेरा,
यह सारा जीवन है तेरा ।
फिर क्यों सुधि है बिसारी,
हे गोवर्धन गिरिधारी ।।१।।
मेरी विनती सुनो बनवारी ।।
चार दिवस जग बीच बसेरा,
फिर भी कहता तेरा-मेरा ।
जीवन केवल साँझ-सबेरा,
माया ने है मति को फेरा ।।
अब तो उबारो बनवारी । हे गोवर्धन गिरिधारी ।।२।।
मेरी विनती सुनो बनवारी ।।
जो खोना है उसको पाया,
जो पाना था वह बिसराया ।
झूठ ही जीवनभर अपनाया,
साँझ हुई तब होश में आया ।।
अब तो बचाओ गिरिधारी,
मैं आया शरण तिहारी ।।३।।
हे गोवर्धन गिरिधारी । मेरी विनती सुनो बनवारी ...

शरण में आई तुम्हारी

अचला अग्रवाल, दुर्ग

चरणों में राखो कृष्ण मुरारी ।
प्रभु इतनी सी विनती हमारी ।।
मोह-माया के भँवर में, दुस्तरण दुर्गम डगर में,
घिरी हुई इस सुता को त्राण कर लो हे मुरारी ।।
प्रभु इतनी सी विनती हमारी ।।
हे कन्हैया हम तुम्हारे, और तुम ही हो हमारे ।
छोड़कर तुझको मुरारी, जाएँ हम कहो किसके द्वारे ।।
हे प्रभु आकर हरो तुम, मेरी बाधा सारी ।।
शरण में आई तुम्हारी ।।
प्रभु इतनी सी विनती हमारी ।।

स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों को साकार करने में महामना मदन मोहन मालवीय जी का योगदान

सम्पादकीय

(गतांक से आगे)

विश्वविद्यालय हेतु धन-संग्रह करने के लिए मालवीय जी को बहुत सी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। बहुत से अपमान भी सहन करने पड़े, किन्तु महान उद्देश्य हेतु उनको मिला अपमान भी सम्मान और वन्द्य हो गया।

वे एक नवाब के पास विश्वविद्यालय हेतु धन माँगने गए। नवाब ने तिरस्कारपूर्वक उन्हें अपना जूता दे दिया। मालवीय जी उस जूते को नीलाम करने लगे। जब यह बात नवाब को जानकारी हुई, तो उसने क्षमा माँगी और दान दिया।

विश्वविद्यालय के निर्माण हेतु मालवीयजी एकबार हैदराबाद के निजाम के पास गए। निजाम ने सहायता करना अस्वीकार कर दिया। मालवीयजी इतनी सहजता से छोड़नेवाले नहीं थे। वे यथोचित सुयोग की प्रतीक्षा करने लगे। संयोगवश उसी समय वहाँ एक सेठ का निधन हो गया। उसके परिजन शव के पीछे-पीछे पैसा बरसाते हुए जा रहे थे। मालवीयजी भी शव-यात्रा में मिलकर पैसा उठाने लगे। यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ। तभी एक व्यक्ति ने पूछा – आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? मालवीयजी ने कहा – क्या करूँ, निजाम ने तो कुछ भी नहीं दिया। जब मैं बनारस वापस जाऊँगा और लोग पूछेंगे कि हैदराबाद में क्या मिला, तो क्या उत्तर दूँगा? अत: निजाम का दान भले ही नहीं मिला, शव-विमान का दान तो मिल गया। जब निजाम को यह जानकारी हुई, तो उन्होंने मालवीयजी से क्षमा माँगी और विश्वविद्यालय हेतु पर्याप्त धन दिया।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना : आधुनिक और प्राचीन शिक्षा का समन्वय

अनेकों विघ्न-बाधाओं को पार कर सन् १९११ में 'हिन्दू युनिवर्सिटी सोसायटी' की स्थापना हुई और इसी नाम से विश्वविद्यालय का पंजीकरण हुआ। १९१६ में विश्वविद्यालय का उद्घाटन हुआ। विश्वविद्यालय स्थापित होने के बाद अपनी प्रतिज्ञानुसार मालवीयजी ने सर सुन्दरलाल जी को विश्वविद्यालय का प्रथम कुलपति बनाया और सुन्दरलाल जी ने भी एक लाख रूपये प्रदान किए।

विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय छात्रावास, देश-विदेश सबके लिए धर्म-विज्ञान संकाय, कला, तकनीकि आदि के अध्ययन की व्यवस्था की। विदेश के लोग भी भारत की महान उदार संस्कृति का अध्ययन कर उदार और सदाचारी होंगे। इससे भारत की महिमा विदेशों में पुन: सुस्थापित होगी और भारत के बारे में लोगों की भ्रान्ति दूर होगी। भारत और भारतेतर विद्वानों के बीच समन्वय स्थापित करने की यह एक सुनियोजित सुचिन्तित योजना थी।

सन् १९३५ में गीता-प्रवचन में उन्होंने छात्र-छात्राओं एवं अध्यापकों को सम्बोधित करते हुए कहा था – "इस विद्यालय में केवल विद्या ही नहीं पढ़नी है, इसी के साथ चरित्र भी बनाना है। ज्ञान और चरित्र दोनों का मेल कर देने से संसार में मान होगा तथा गौरव प्राप्त होगा।"

मालवीय जी की दृष्टि में युवक कैसा हो?

मालवीय जी से जब कोई लड़का या लड़की आटोग्राफ बुक पर हस्ताक्षर करने को कहती, तो वे लड़कों के आटोग्राफ बुक पर यह लिखते –

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया ।
देशभक्त्याऽत्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव ।।

अर्थात् सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति और आत्मत्याग के द्वारा सदा सम्मान प्राप्त करने के योग्य बनो। उन्होंने एक व्याख्यान में छात्रावास में रहनेवाले बालक-बालिकाओं से कहा था – "विश्वविद्यालय में रहनेवाले का पहला कर्तव्य है कि वह व्यायाम कर शरीर बनाए। पहले स्वास्थ्य सुधारे फिर विद्या पढ़े। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन करे, तो जीवन का लाभ उठा सकते हैं। नित्य सुबह-शाम नियम से व्यायाम करे। शाम को खेले। मैदान में भ्रमण करे। जल्दी भोजन कर नियम से नित्य अध्ययन करे। धार्मिक उत्सवों, एकादशी कथा, गीता-प्रवचन आदि में उपस्थित होकर विद्वानों का उपदेश ले। उनका अनुभव ग्रहण करे और आशीर्वाद ले। समय नष्ट न करे। माता पूज्य है। हम माता से शिक्षा लें।'

एक बार मालवीयजी एक स्कूल में गए, जहाँ उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की थी। वहाँ के छात्रों के सस्वर वेद-पाठ से बहुत प्रसन्न हुए। वे प्रत्येक छात्र से पूछते थे – क्या तुम नित्य नियम से व्यायाम करते हो? प्रतिदिन कितना दूध

पीते हो? फिर उन्होंने असन्तोष व्यक्त करते हुए कहा – "व्यासजी, ये लोग न तो ठीक से दूध पीते हैं, न ही नित्य व्यायाम करते हैं। देखिए ये कितने दुर्बल हैं। इनके चेहरे पर तेज नहीं है, जो होना चाहिए। फिर उन्होंने व्यास जी को माघ का श्लोक सुनाने का संकेत किया। जिसमें नारदजी के आकाश से उतरते समय के तेज का वर्णन है –

गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः ।
पतत्यधोधाम विसारि सर्वतः किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः ।।
चयस्त्विषमित्यवधारितं पुरा
ततःशरीरीति विभाविताकृतिम् ।
विभुर्विभक्त्यावयव पुमानिति
क्रमादमुंनारद इत्यबोधि सः ।।

नारदजी को आकाश से पृथ्वी पर आते देखकर उनके दिव्य तेज प्रकाश के कारण लोग समझ नहीं पा रहे हैं कि ये कौन हैं। लोगों ने सोचा – क्या यह सूर्य हैं, अग्नि हैं। लेकिन सूय-किरण तिरछी होती है और अग्नि शिखा ऊपर जाती है। ये दोनों ही नहीं है। पास में आने पर समझ में आया कि ये नारदजी हैं।

मालवीय जी ने कहा – शाबाश, मैं ऐसा ही तेज यहाँ के छात्रों के मुख-मण्डल पर देखना चाहता हूँ। ऐसे सबल स्वस्थ शरीर, प्रखर मेधा और माता-पिता-राष्ट्रभक्तिपूर्ण तेजस्वी युवक मालवीय जी चाहते थे।

नारी शिक्षा

मालवीयजी ने नारी शिक्षा पर भी बहुत जोर दिया और कामाक्षा में कन्या विद्यालय की भी स्थापना की। वे लड़कियों के आटोग्राफ बुक में लिखते थे –

जो पै पुत्री होय तो, सीता सती समान ।
अथवा सावित्री सरिस रूप-सील-गुन खान ।।

स्वास्थ्य सेवा – सर सुन्दरलाल चिकित्सालय

स्वामी विवेकानन्द जी ने शिक्षा के साथ-साथ स्वास्थ्य को भी विशेष महत्व दिया था। रामकृष्ण मिशन में कई स्थानों पर बहुत बड़े-बड़े अस्पताल तो हैं हीं, किन्तु अन्य आश्रमों में और उनसे प्रेरित संस्थानों में छोटे स्वास्थ्य केन्द्रों की भी व्यवस्था रहती है।

मालवीय जी ने भी स्वयं अनुभव किया था कि भारत में लोगों के लिए अच्छी चिकित्सा की सुविधा नहीं है। सुविधा है भी तो बहुत मँहगी है। गाँवों के गरीब लोग गरीबी के कारण सामान्य चिकित्सा के बिना ही रोगग्रस्त होकर अल्पायु में ही काल-कवलित हो जाते हैं। इतनी मँहगी चिकित्सा नहीं करा पाते। इसके लिए उन्होंने एक अस्पताल की योजना बनाई और बी.एच.यू. का सर-सुन्दरलाल चिकित्सालय आज भी देश में प्रसिद्ध है, जहाँ एलोपैथिक और आयुर्वेदिक दोनों प्रकार की सस्ती चिकित्सा की जाती है। अन्तरंग और बहिरंग दोनों विभाग हैं। रोगियों के परिजनों के लिए भी कुछ व्यवस्थाएँ हैं। इस प्रकार मालवीय जी ने भारतवासियों की स्वस्थता के लिए स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा प्रवर्तित स्वास्थ्य प्रकल्प में योगदान किया।

एक बदमाश छात्र को मालवीयजी ने अपने स्नेह से सुधार दिया। एक गरीब कर्मचारी की चोरी की करुण कथा सुनकर वे दुखित हो गये। उसके वेतन को बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि मेरे यहाँ के कर्मचारियों को अपने परिवार चलाने भर का वेतन न मिले, यह दुख की बात है। मालवीयजी के जीवन की ऐसी अनेकों घटनाएँ हैं, जो मानवीय संवेदना में दैवी सद्गुण परोपकार की उद्भावना करती हैं।

तत्कालीन राजनैतिक क्षेत्र के विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर रहकर उन्होंने बड़े ही महत्वपूर्ण कार्य किए। चौराचौरी कांड में स्वयं वकालत कर १५० लोगों को फाँसी होने से बचाया।

मालवीय जी कहते थे – "**मैं देश-सेवा को ईश्वर की उपासना मानता हूँ**।" जब मालवीयजी अस्वस्थ थे, विश्वविद्यालय काशी क्षेत्र के बाहर पड़ता है, वहाँ मरने से मुक्ति नहीं होगी, ऐसा सोचकर कुछ लोग उन्हें काशी की परिधि में ले जाने की बात धीरे-धीरे कह रहे थे। मालवीयजी को यह ज्ञात हुआ। उन्होंने राजा मोतीचन्द्र जी के उत्तराधिकारी ज्योतिभूषणजी को बुलाकर कहा, "देखो ज्योति ! मुझे ये लोग काशी न ले जाने पावें। मैं अभी मोक्ष नहीं चाहता। मेरे काम अधूरे पड़े हैं। मुझे विश्वविद्यालय और देश की सेवा करनी है। बोलो वचन देते हो कि तुम मेरे इस आदेश का पालन करोगे?" ज्योतिभूषणजी ने विस्मित होकर वचन दिया, तब मालवीयजी को शान्ति मिली।

ऐसे महान कर्मयोगी, निष्ठावान राष्ट्रभक्त मालवीयजी, जिन्होंने स्वामी विवेकानन्द जी के आदर्शों के अनुरूप संवेदना की अनुभूति की, योजना बनाई, उसके लिए संघर्ष किया और पुनः इस देश की सेवा हेतु मुक्ति को ठुकरा दिया। उन्होंने १२ नवम्बर, १९४६ को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के मालवीय भवन में सम्पूर्ण देश को शोकमग्न कर अपना भौतिक शरीर-त्याग कर दिया। ○○○

आदर्श को पकड़े रहो

स्वामी विवेकानन्द

आदर्श की उपलब्धि के लिये सच्ची इच्छा – यही पहला बड़ा कदम है। इसके बाद बाकी सब कुछ सहज हो जाता है। संघर्ष एक बड़ा पाठ है। याद रखो, संघर्ष इस जीवन में बड़ा लाभदायक है। हम संघर्ष में से होकर ही अग्रसर होते हैं – यदि स्वर्ग के लिए कोई मार्ग है, तो वह नरक में से होकर जाता है। नरक से होकर स्वर्ग – यही सदा का रास्ता है। जब जीवात्मा परिस्थितियों का सामना करते हुए मृत्यु को प्राप्त होती है, जब मार्ग में इस प्रकार सहस्रों बार मृत्यु होने पर भी वह निर्भीकता से संघर्ष करती हुई आगे बढ़ती जाती है, तब वह परम शक्तिशाली बन जाती है और उस आदर्श पर हँसती है, जिसके लिए वह अभी तक संघर्ष कर रही थी, क्योंकि वह जान लेती है कि वह स्वयं उस आदर्श से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। स्वयं मेरी आत्मा ही लक्ष्य है, अन्य और कुछ भी नहीं, क्योंकि ऐसा क्या है, जिसके साथ मेरी आत्मा की तुलना हो सके? सुवर्ण की एक थैली क्या कभी मेरा आदर्श हो सकती है? कदापि नहीं! मेरी आत्मा ही मेरा सर्वोच्च ध्येय है। अपने प्रकृत स्वरूप की अनुभूति ही मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय है।

दुनिया में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो पूर्णतया बुरी हो। यहाँ शैतान और ईश्वर – दोनों के लिए ही स्थान है, अन्यथा शैतान यहाँ होता ही नहीं। जैसे मैंने तुमसे कहा ही है, हम नरक में से होकर ही स्वर्ग की ओर कूच करते हैं। हमारी भूलों की ही यहाँ उपयोगिता है। बढ़े चलो ! यदि तुम सचेत हो कि तुमने कोई गलत कार्य किया है, तो भी पीछे मुड़कर मत देखो। यदि पहले तुमने से गलतियाँ न की होतीं, तो क्या तुम मानते हो कि आज तुम जैसे हो, वैसे हो पाते? अत: अपनी भूलों को आशीर्वाद दो। वे अदृश्य देवदूतों के समान रही हैं। धन्य हो दु:ख ! धन्य हो सुख ! चिन्ता न करो कि तुम्हारे मत्थे क्या आता है। आदर्श को पकड़े रहो। बढ़ते चलो ! छोटी-छोटी बातों और भूलों पर ध्यान न दो। हमारी इस रणभूमि में भूलों की धूल तो उड़ेगी ही। जो इतने नाजुक हैं कि धूल सहन नहीं कर सकते, उन्हें पंक्ति से बाहर चले जाने दो।

यदि एक आदर्श पर चलने वाला व्यक्ति हजार भूलें करता है, तो यह निश्चित है कि आदर्शविहीन व्यक्ति पचास हजार भूलें करेगा। अत: एक आदर्श रखना अच्छा है। इस आदर्श के सम्बन्ध में जितना हो सके, सुनना होगा; तब तक सुनना होगा, जब तक कि वह हमारे अन्दर प्रवेश नहीं कर जाता, हमारे मस्तिष्क में पैठ नहीं जाता, जब तक वह हमारे रक्त में घुसकर उसकी एक-एक बूँद में घुल-मिल नहीं जाता, जब तक वह हमारे शरीर के अणु-परमाणु में ओतप्रोत नहीं हो जाता। अत: पहले हमें यह आत्मतत्त्व सुनना होगा। कहा है, "हृदय पूर्ण होने पर मुख बोलने लगता है" (Out of the fullness of the heart the mouth speaketh) – और हृदय के इस प्रकार पूर्ण होने पर हाथ भी कार्य करने लगते हैं।

विचार ही हमारी कार्य-प्रवृत्ति की प्रेरक-शक्ति है। मन को सर्वोच्च विचारों से भर लो, दिन-पर-दिन इन्हीं भावों को सुनते रहो, माह-पर-माह इन्हीं का चिन्तन करो। प्रारम्भ में सफलता न भी मिले, पर कोई हानि नहीं; यह असफलता तो बिल्कुल स्वाभाविक है, यह मानव-जीवन का सौन्दर्य है। इन असफलताओं के बिना जीवन क्या होता? यदि जीवन में इस असफलता को जय करने की चेष्टा न रहती, तो जीवन धारण करने का कोई प्रयोजन ही न रह जाता। उसके न रहने पर जीवन का कवित्व कहाँ रहता? यह असफलता, यह भूल रहने से हर्ज भी क्या? मैंने गाय को कभी झूठ बोलते नहीं सुना, पर वह सदा गाय ही रहती है, मनुष्य कभी नहीं हो जाती। अत: यदि बार-बार असफल हो जाओ, तो भी क्या? कोई हानि नहीं, हजार बार इस आदर्श को हृदय में धारण करो और यदि हजार बार भी असफल हो जाओ, तो एक बार फिर प्रयत्न करो। सब जीवों में ब्रह्मदर्शन ही मनुष्य का आदर्श है। यदि सब वस्तुओं में उसको देखने में तुम सफल न होओ, तो कम-से-कम एक ऐसे व्यक्ति में, जिसे तुम सर्वाधिक प्रेम करते हो, उसका दर्शन करने का प्रयत्न करो, तदुपरान्त दूसरों में उसका दर्शन करने की चेष्टा करो। इसी प्रकार तुम आगे बढ़ सकते हो। आत्मा के सम्मुख तो अनन्त जीवन पड़ा हुआ है – अध्यवसाय के साथ लगे रहने पर तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी।

एक विचार लो, उसी को अपना जीवन बनाओ – उसी का चिन्तन करो, उसी का स्वप्न देखो और उसी में जीवन बिताओ। तुम्हारा मस्तिष्क, स्नायु तथा शरीर के सर्वाङ्ग उसी विचार से पूर्ण रहें। दूसरे सारे विचार छोड़ दो। यही सिद्ध होने का उपाय है और इसी उपाय से बड़े-बड़े धर्मवीरों की उत्पत्ति हुई है। बाकी लोग बातें करने वाली मशीनें मात्र हैं। ❍

स्वामी शान्तानन्द और अनाहत-ध्वनि

श्रीमाँ सारदादेवी काशी आई हुई थीं। माँ के यहाँ अनेक संन्यासी और भक्तों का ताता लगा रहता था। वे सबकी माँ तो थी हीं, साथ ही वे रामकृष्ण संघ की संघजननी भी थीं। संन्यासी और भक्तवृन्द अपने साधना-विषयक प्रश्न माँ के सामने रखते और माँ सहज ही उनका शंका समाधान कर देतीं। एक साधु ने बातचीत के प्रसंग में माँ से प्रश्न किया, 'कुण्डलिनी के न जागने से मानो कुछ भी न हुआ।' माँ ने बड़े स्नेहपूर्वक अभयवाणी देते हुए कहा, 'अवश्य जागेगी। उनका नाम जपते रहने से सब हो जाएगा। मन के स्थिर न होने पर भी तो लाखों जप किया जा सकता है। कुण्डलिनी जागने के पहले अनाहत-ध्वनि सुनाई पड़ती है। माँ जगदम्बा की कृपा न होने से यह नहीं होता।'

कालान्तर में माँ की यह वाणी सत्य हुई। जिन साधु ने माँ से यह प्रश्न पूछा था, उनका नाम स्वामी शान्तानन्द जी था। वे श्रीमाँ के शिष्य थे और रामकृष्ण संघ की महानतम संन्यासी-विभूतियों में से एक थे। उनका मन सदैव आध्यात्मिक भाव-राज्य के स्तर पर आरूढ़ रहता।

माँ ने उन्हें कहा था, 'जपात् सिद्धिः' – जप से ईश्वर-प्राप्ति होगी। स्वामी शान्तानन्द जी ने माँ के इस उपदेश का निष्ठा से पालन किया। वे निरन्तर मन्त्र का जप करते रहते। जप करते-करते उनकी कुण्डलिनी जागृत हो गई और उन्हें स्पष्ट अनाहत-ध्वनि की अनुभूति हुई। उन्हें केवल एक बार ही इसका श्रवण हुआ हो, ऐसा नहीं, बल्कि योगियों को भी दुर्लभ यह अनाहत-ध्वनि उनके जीवन का एक अंग बन गई थी।

एक संन्यासी के द्वारा पूछने पर उन्होंने कहा था, '१९११ ई. में जब मैं काशी में था, तब से यह ध्वनि आरम्भ हुई। लगभग ४० वर्षों तक मैं काशी में रहा। एक बार रात्रि के समय मुझे ॐ की पवित्र-ध्वनि सुनाई दी। मैंने सोचा, यह अनुभव कदाचित् सबको होता होगा। उसके बाद यह ध्वनि लगभग सदा मुझे सुनाई पड़ती। बाद में स्वामी तुरीयानन्दजी से मैंने इसके बारे में पूछा। उन्होंने कहा कि मेरी कुण्डलिनी जागृत हो गई है। उन्होंने मुझे आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया।'

महाराज जब अपना यह अनुभव सुना रहे थे, तब संन्यासी ने पूछा, 'महाराज, यह ध्वनि कैसी होती है?'

तब महाराज ने दीर्घ ॐ का उच्चारण किया।

'क्या आप हमेशा इस ध्वनि को सुनते रहते हैं?'

'हाँ।' महाराज ने उत्तर दिया।

'क्या इस समय मुझसे बात करते समय भी आपको यह अनाहत-ध्वनि सुनाई पड़ती है?' संन्यासी ने पूछा।

'तुमसे बात करते समय भी मुझे भीतर इसकी प्रतीति हो रही है। बात बन्द करने से यह स्पष्ट सुनाई देती है।'

अन्तिम दिनों में स्वामी शान्तानन्द जी बेलूड़ मठ के प्रेमानन्द स्मृति भवन में रहते थे। कुछ संन्यासी-भक्त प्रतिदिन उनका दर्शन करने आते। दोपहर में वे एक आराम-कुर्सी पर बैठते और कोई उनके सामने पुस्तक का पाठ करता और वे ध्यान से सुनते। उन्हें श्रीरामकृष्ण-वचनामृत पुस्तक बड़ी प्रिय थी। प्रतिदिन उनके कमरे में इस पुस्तक का पाठ होता। उन्होंने अपने जीवन में यह पुस्तक अनेकों बार पढ़ी थी। यहाँ तक कि श्रीरामकृष्ण-वचनामृत के लगभग १४०० पृष्ठ उन्हें कण्ठस्थ हो गए थे। यदि पढ़ते समय कोई पाठक शब्दों का गलत उच्चारण करता, तो वे तुरन्त उसे ठीक कर देते।

एकबार वचनामृत का पाठ चल रहा था। श्रीरामकृष्ण अनाहत-ध्वनि के बारे में कह रहे थे, 'एक शब्द-ब्रह्म होता है। योगीगण इसकी श्रवण-अनुभूति के लिए साधना करते हैं। अनाहत की शब्द-ध्वनि अपने-आप नाभि से निकलती है। जिन साधकों की सिद्धावस्था हो गई है, वे इसे सुन सकते हैं।' पाठक के अलावा और भी तीन-चार भक्त महाराज के कमरे में थे। उनमें से एक ने कहा, 'पहले के सिद्ध-महात्माओं ने साधना के द्वारा इस अनाहत-ध्वनि को सुना था, किन्तु वर्तमान में भी क्या इसे कोई सुन सकता है?

स्वामी शान्तानन्द जी कदाचित् ही अपने आध्यात्मिक अनुभवों की बातें कहते थे। भक्त के इस प्रकार कहने पर उन्होंने तुरन्त अपना मौन तोड़ा और धीरे से कहा, 'अवश्य, इसे सुना जा सकता है। मैं इस समय भी इस अनाहत-ध्वनि को सुन रहा हूँ।'

जिन साधकों को साधना करते-करते, ईश्वर की कृपा से परम-तत्त्व की प्राप्ति हो गई है, उनका मन कर्तृत्व-भोक्तृत्व रूपी इस संसार से ऊपर उठ जाता है। सामान्य व्यक्ति का मन शरीरादि के आवश्यक कार्य आहार, निद्रादि तक सीमित रहता है। किन्तु सिद्ध-महात्मा इन सबसे ऊपर उठ जाते हैं। उनका मन-मधुप सदैव अपने प्रियतम ईश्वर की रूप-माधुरी में, उनके नाम-गुणगान में मत्त रहता है।

एक बार एक संन्यासी ने स्वामी शान्तानन्द महाराज से पूछा, 'महाराज, आपकी उम्र कितनी है?'

स्वामी शान्तानन्द जी का मन इस देह-गेह रूपी संसार में था ही नहीं। वे अपनी उम्र के बारे में जानते नहीं थे। प्रश्न पूछने पर मानो वे एक अबोध बालक की भाँति सकुचा गए। उन्होंने अपने एक सेवक-संन्यासी को बुलाकर पूछा, 'अरे सुशील, मेरी उम्र कितनी है?'

सेवक ने बहुत काल-गणनादि करके महाराज को बताया, 'महाराज, आप अभी ८४ वर्ष के हैं।'

स्वामी शान्तानन्द जी अपनी उम्र जानकर बहुत प्रसन्न हुए, मानो उन्हें एक नई चीज पता लगी हो। उन्होंने उन प्रश्न पूछने वाले संन्यासी से कहा, 'मेरी उम्र ८४ वर्ष की है!'

दो वर्ष बीतने के बाद उन्हीं संन्यासी ने पुन: महाराज से उनकी उम्र के बारे में पूछा, 'महाराज, आपकी उम्र क्या है?'

महाराज ने बिना किसी हिचक से कहा, 'मेरी उम्र ८४ वर्ष की है।' मानो उनकी उम्र कभी बदलती ही नहीं। संन्यासी भी खिलखिलाकर हँस पड़े।

स्वामी शान्तानन्द जी अपने नाम के अनुरूप ही शान्त एवं सौम्य थे। यद्यपि वे अधिक बात नहीं करते थे, तो भी उनके महान गुणों से साधु-भक्तगण स्वत: खिंचे चले आते। उनकी महासमाधि १७ जनवरी, १९७४ को हुई, अन्तिम समय में वे माँ का नाम जप रहे थे। ○○○

संसार में कैसे रहें?

श्रीरामकृष्ण परमहंस

सब काम करना चाहिए, परन्तु मन ईश्वर में रखना चाहिए। किसी धनी के घर की दासी उसके घर का सारा काम करती है, किन्तु उसका मन अपने गाँव के घर में लगा रहता है। मालिक के लड़कों को वह अपने लड़कों की तरह लालन-पालन करती है, उन्हें 'मेरा मुन्ना', 'मेरा राजा' कहती है, पर मन-ही-मन खूब जानती है कि ये मेरे कोई नहीं हैं।

कछुआ रहता तो पानी में है, पर उसका मन रहता है किनारे पर, जहाँ उसके अण्डे रखे हैं। संसार का काम करो, पर मन रखो ईश्वर में।

यदि भगवद्-भक्ति पाए बिना संसार में रहोगे, तो दिनोंदिन उलझनों में फँसते जाओगे और यहाँ तक फँस जाओगे कि फिर पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाएगा। रोग, शोक, ताप आदि से अधीर हो जाओगे। विषय-चिन्तन जितना ही करोगे, आसक्ति भी उतनी ही अधिक बढ़ेगी।

हाथों में तेल लगाकर कटहल काटना चाहिए। नहीं तो, हाथों में उसका दूध चिपक जाता है। भगवद्-भक्तिरूपी तेल हाथों में लगाकर संसाररूपी कटहल के लिए हाथ बढ़ाओ।

यदि भक्ति पाने की इच्छा हो, तो निर्जन में रहना होगा। मक्खन खाने की इच्छा हो, तो दही निर्जन में ही जमाया जाता है। हिलाने-डुलाने से दही नहीं जमता। इसके बाद निर्जन में ही सब काम छोड़कर दही मथा जाता है, तभी मक्खन निकलता है।

देखो, निर्जन में ही ईश्वर का चिन्तन करने से यह मन भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का अधिकारी होता है। इस मन को यदि संसार में डाल रखोगे, तो यह पतित हो जाएगा। संसार में काम-कांचन के चिन्तन के सिवा और है ही क्या?

संसार जल है, मन मानो दूध। यदि पानी में डाल दोगे, तो दूध पानी में मिल जाएगा, पर उसी दूध का निर्जन में मक्खन बनाकर यदि पानी में छोड़ोगे, तो मक्खन पानी में उतराता रहेगा। इस प्रकार निर्जन में साधना द्वारा ज्ञान-भक्ति प्राप्त करके यदि संसार में रहोगे भी, तो संसार से निर्लिप्त रहोगे।

साथ ही साथ विचार भी खूब करना चाहिए। काम और कांचन अनित्य हैं, एकमात्र ईश्वर ही नित्य हैं। रुपये से क्या मिलता है? रोटी, दाल, कपड़े, रहने की जगह, बस यहीं तक। रुपये से ईश्वर नहीं मिलते, तो रुपया जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। इसी को विचार कहते हैं। ○○○
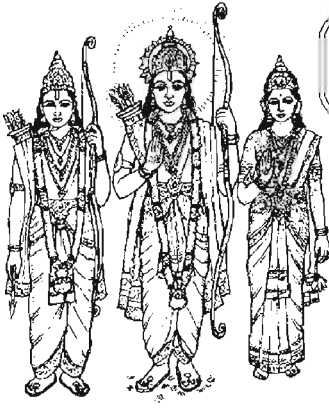
धर्म-जीवन का रहस्य (७/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज, अन्य समुपस्थित सन्त-मण्डली, जिज्ञासु श्रोतावृन्द और भक्तिमती देवियो ! आज इस पवित्र प्रांगण में मैं आपके समक्ष एक यन्त्र के रूप में कथा प्रारम्भ करने जा रहा हूँ।

प्रात:काल की स्मृति आज दिन भर मेरे मन में बार-बार आती रही। मैं उस स्थान पर गया था, जहाँ पर ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी की स्मृति में एक स्तम्भ बनाया गया है। वहाँ पहुँचकर हृदय में अनेक भावनाओं का उद्रेक हुआ। उस स्तम्भ पर उनकी किशोरावस्था में रचित दो कविताएँ अंकित हैं। उनके कविरूप से मैं परिचित नहीं था, किन्तु वे कविताएँ भावनाओं से बड़ी ओतप्रोत तो थी हीं, उनमें विचारों का भी ऐसा समावेश था कि उन्हें पढ़कर आश्चर्यमिश्रित आनन्द की अनुभूति हुई। पूर्व जन्मों से उनके जीवन में जो प्रारम्भिक संस्कार विद्यमान रहे होंगे, उसी का प्रतिफल इस विशाल आश्रम के रूप में हम सबके समक्ष विद्यमान है। उन्होंने श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द की विचारधारा को जिस प्रकार आत्मसात् किया, वह और उसके साथ उनकी तेजस्वी प्रतिभा तथा पुरुषार्थ यहाँ इस रूप में साकार हुआ है, जहाँ आपको आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान प्राप्त होता है। इसके साथ ही आज मुझे यह भी एक आनन्ददायक अनुभूति हुई कि जब कोई महापुरुष जाता है, तो बड़े अभाव की अनुभूति होती है। पर वह परम्परा आज भी है, जब श्रद्धेय स्वामीजी (सत्यरूपानन्दजी) को देखता हूँ, जिन्हें पहले भी ब्रह्मचारी के रूप में देखा था। उनकी विनयशीलता, मानवमात्र के प्रति सेवा की जो भावना है, वह श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द विचारधारा के अजस्र प्रवाह से प्रारम्भ हुई, जो ब्रह्मलीन स्वामी (आत्मानन्दजी) के जीवन के माध्यम से प्रवाहित हई और अब भी प्रवाहित हो रही है। हमें विश्वास है कि हम सभी हमारी क्षमतानुसार उस प्रवाह का लाभ ले सकेंगे और उसका सदुपयोग करते हुए सभी इस महान यज्ञ में सम्मिलित होंगे।

उस 'धर्म' पर चर्चा चल रही है, जो समाज की सभी समस्याओं का समाधान दे सके। वह समाधान कैसे हो, इस सन्दर्भ में मानस में एक दिव्य चरित्र प्रस्तुत किया गया है। जब हम कहते हैं कि भगवान ने बार-बार अवतार लिया या लेते रहते हैं, तो कई लोगों को यह बात तर्कसंगत नहीं लगती। वे भगवान के अवतार लेने की बात को स्वीकार करने में अपने को अक्षम पाते हैं, परन्तु यदि वे धैर्यपूर्वक और गम्भीरता के साथ विचार करने की चेष्टा करें और किसी पूर्वाग्रह को ही सिद्धान्त न मान बैठे हों, तो इसे समझना और हृदयंगम करना बहुत कठिन नहीं है। वेदान्त की भाषा में वस्तुत: ईश्वर द्रष्टा हैं। इस विषय पर मैं अत्यन्त गम्भीर रूप में कुछ कहना नहीं चाहूँगा।

वेदान्त-शास्त्र ने 'ब्रह्म' के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया, उनमें दो शब्द बड़े प्रसिद्ध हैं – वह 'द्रष्टा' है और 'कूटस्थ' है। द्रष्टा अर्थात् देखनेवाला। देखनेवाले तो हम सभी हैं, परन्तु उसमें द्रष्टा का तात्पर्य यह है कि जब हम लोग देखते हैं, तो दृश्य में किसी-न-किसी रूप में सम्मिलित हो जाते हैं। चाहे सक्रिय रूप से सम्मिलित होते हों या मानसिक रूप से, पर सम्मिलित तो हम होते ही हैं। सामने दो व्यक्ति लड़ रहे हैं, तो एक व्यक्ति के प्रति हमारे मन में खूब सहानुभूति उत्पन्न हो सकती है और सम्भव है कि हम स्वयं उसकी ओर से लड़ने लगे। यदि हम लड़ने में सक्षम नहीं होते हैं, तो भी हमारे मन में यह बात तो आती ही है कि इस व्यक्ति का पक्ष ठीक है और दूसरे व्यक्ति का पक्ष ठीक नहीं है। इसका अर्थ है कि हम किसी-न-किसी रूप में अपने आपको जब दृश्य में सम्मिलित कर देते हैं, तो स्वभावत: हमारे जीवन में या हमारे मन में दु:ख-सुख की अनुभूति होती है। हम जिस पक्ष की विजय चाहते हैं, उसकी विजय होती है, तो सुख होता है और जिस पक्ष की विजय नहीं चाहते, यदि उस पक्ष की विजय होती है, तो

हमें दु:ख हो जाता है। यदि हम उसमें सक्रिय भाग लेते हैं, तो भी हम उसके दु:ख-सुख में भागी बनते ही हैं।

वेदान्त में ब्रह्म के लिए जिस अर्थ में 'द्रष्टा' शब्द का प्रयोग किया गया है, उसे बताने के लिए प्रकाश का दृष्टान्त दिया जा सकता है। अपने सामने होनेवाले प्रकाश में हम सब अनेक रूपों में किसी-न-किसी कार्य में लगे हुए हैं। परन्तु प्रकाश के मन में इन घटनाओं के प्रति कोई पक्षपात या विरोध नहीं है। वह इन घटनाओं से रंचमात्र भी प्रभावित नहीं होता। ऐसा नहीं है कि रामायण की कथा हो, तो प्रकाश बढ़ जाता हो और कोई भड़काऊ या झगड़ा करानेवाला भाषण दे, तो प्रकाश बुझ जाता हो। प्रकाश के समक्ष, चाहे कोई अच्छी बात कहे या बुरी बात कहे, कोई अच्छा कार्य करे या बुरा कार्य करे; प्रकाश तो केवल प्रकाश के रूप में रहेगा, उसका किसी क्रिया में सक्रिय हस्तक्षेप नहीं होता। इसी अर्थ में वेदान्त ब्रह्म को 'द्रष्टा' कहता है।

इस प्रश्न का भी उत्तर देने की चेष्टा की गई कि ईश्वर संसार की घटनाओं में हस्तक्षेप क्यों नहीं करता? यदि वह है, तो उसे हस्तक्षेप करना चाहिए। न्याय और अन्याय का संघर्ष है, तो उसे न्याय का पक्ष लेना चाहिए। यदि कोई शक्तिशाली व्यक्ति दुर्बल को परास्त कर रहा है, तो उसे दुर्बल का पक्ष लेना चाहिए, परन्तु ऐसा हस्तक्षेप संसार में बहुधा नहीं दिखाई देता। जब व्यक्ति इस समस्या का उत्तर ढूँढ़ नहीं पाता, तब उसे स्वयं ईश्वर के ही अस्तित्व पर सन्देह होने लगता है। वेदान्त ने अपनी पद्धति से इसके समाधान की चेष्टा की है। गोस्वामीजी कहते हैं – विषय, इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के देवता और जीवात्मा, ये सभी एक-दूसरे की सहायता से सचेतन होते हैं और इन सबका जो परम प्रकाशक है, वही अनादि ब्रह्म अयोध्यापति श्रीराम हैं –

बिषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक तें एक सचेता।।
सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई।। १/११७/५-६

वह परम प्रकाशक ब्रह्म एक रूप में द्रष्टा मात्र है। उसके साथ कूटस्थ शब्द लगाकर इसे और भी स्पष्ट करने की चेष्टा की गई। आपने लुहार के यहाँ देखा होगा, उसके पास एक भट्ठी होती है। जब उसे लोहे को कोई विशेष आकृति देनी होती है, तो पहले वह उस लोहे को आग में तपाता है, उसमें थोड़ी पिघलने की स्थिति पैदा करता है, नरमाहट लाता है और उसके बाद हथौड़ा लेकर उसे अपनी जरूरत के अनुसार आकृति देना शुरू कर देता है। एक ओर उसका हाथ चल रहा है और जिस लोहे को आकृति दी जा रही है, वह भी इधर-उधर चलता रहेगा। आपने लुहार के यहाँ देखा होगा, जहाँ यह कार्य होता है, वहाँ एक बहुत बड़ा लोहा गड़ा होता है। उसी लोहे के ऊपर वह गरम लोहे को कूट-कूटकर आकृति देता रहता है।

वह गड़ा हुआ स्थिर लोहा ही वेदान्त की भाषा में 'कूटस्थ' (ब्रह्म) है। लुहार की भाषा में उसे 'निहाई' कहते हैं। वेदान्त मानो कहता है कि कूटस्थ-निहाई बिल्कुल अविचल है, इन सबसे उसको कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वह कौन-सी धातु है, कैसे पिघली, क्या आकृति बन रही है, बनानेवाला क्या बना रहा है, आदि-आदि। उसे आधार बनाकर लोहार चाहे जिस आकृति वाली वस्तु बनाए और उस वस्तु का चाहे जो उपयोग हो, उससे उस निहाई को कुछ लेना-देना नहीं है।

इस प्रकार यह बताने की चेष्टा की गई कि आपको यदि इस संसार में हस्तक्षेप दिखाई नहीं देता, तो वस्तुत: यह तो स्वाभाविक ही है कि वह 'ब्रह्म' अपने द्रष्टा और कूटस्थ स्वरूप में स्थित है। वह सृष्टि को संचालित नहीं कर रहा है। कुछ ऐसे भी यन्त्रों का निर्माण होता है, जो अपने आप चलते हैं और उसके लिए आप आटोमेटिक – स्वचालित शब्द का प्रयोग करते हैं। उस यन्त्र का निर्माता उसको चलाने की कोई चेष्टा नहीं करता, इसी प्रकार से यह सृष्टि कर्म के द्वारा संचालित हो रही है –

कर्म प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा।। २/२१८/४

कर्म के द्वारा सृष्टि चल रही है। व्यक्ति के जीवन में जो सुख और दुख दिखाई दे रहे हैं, वे उसी के कर्मों के परिणाम हैं। एक ओर वेदान्त ने कहा कि जैसे ब्रह्म द्रष्टा तथा कूटस्थ है, वैसे ही जीव भी अपने द्रष्टा तथा कूटस्थ स्वरूप को समझ ले और उसी में स्थित रहे, तो सुख-दुख से मुक्त हो जाएगा। दूसरी ओर, कर्म-सिद्धान्त कहता है कि जब यह सब कुछ व्यक्ति के कर्म का ही फल है, तो फिर ऐसी स्थिति में हमको निरन्तर सजग रहकर कर्म करना चाहिए, क्योंकि कर्म का फल भोगना अनिवार्य है। कर्म-सिद्धान्त ने कह दिया कि यदि आपको किसी के जीवन में दुख दिखाई दे रहा है, तो इसका अर्थ है कि उस व्यक्ति ने,

या तो अभी अथवा पूर्वजन्म में कोई ऐसा कर्म किया होगा। यह उत्तर अपने आप में सैद्धान्तिक रूप में सत्य ही है, पर व्यक्ति को लगता है कि इस प्रकार का द्रष्टा या कूटस्थ बनना सरल कार्य नहीं है। यह भी बड़ा कठिन कार्य है।

इस पर भक्तों ने तीसरी बात कही। बोले – आप द्रष्टा के स्थान पर अवतारवाद मान लें। उन्होंने यह चेष्टा की कि वह ब्रह्म केवल द्रष्टा ही न बना रहे, अपितु वह स्वयं द्रवित हो और दृश्य में हस्तक्षेप भी करे और इस कर्म-जाल में पड़े हुए व्यक्ति को उस खाते से मुक्त करे। वह तो ऐसा खाता है कि कभी समाप्त ही नहीं होता। न जाने कबसे चल रहा है और यह कभी समाप्त नहीं होगा। समाप्त क्यों नहीं होगा? क्योंकि जो भी कर्म किए जाएँगे, उनमें से ऐसा कोई कर्म नहीं हो सकता, जिसमें पाप-पुण्य मिश्रित न हो। यदि उस खाते में एक नियम होता कि पुण्य और पाप का गणित घटा-बढ़ा दिया जाता, जैसे दस पुण्य किए और आठ पाप किये, तो चलो आठ-आठ बराबर कर दो और दो पुण्य का फल मिले; तो भी कोई बात थी। परन्तु कहते हैं कि उन दस का अलग परिणाम भोगिए और आठ का अलग परिणाम भोगिए। यह खाता ऐसा ही भयानक है, इसलिए तो भक्तों ने इसको कर्मजाल बताकर भगवान से कहा, "महाराज, इस कर्मजाल से तो हम कभी मुक्त ही नहीं हो सकते।" फिर बोले, "चाहे जैसे भी हो, आप कृपा करके द्रवित हो जाइए न! पिघल जाइए न! लगता है कि आप तो कभी पिघलते ही नहीं हैं।"

एक महान युद्ध चल रहा है और पहले भी युद्ध हुए हैं और वह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। परन्तु लगता तो यही है कि वह स्वयं प्रभावित नहीं होता। हम सब इतने प्रभावित होते हैं, परन्तु वह प्रभावित नहीं होता। ऐसी स्थिति में भक्तों ने सोचा कि यह तो द्रष्टा और कूटस्थ है, किसी अन्य आँच से तो पिघलेगा नहीं, इसे तो बस प्रेम की आँच ही पिघला सकती है। इतने अधिक प्रेम और अत्यधिक भावना से जब कोई भक्त उसका स्मरण करता है, उसके अवतार के लिए प्रार्थना करता है, तो इसके परिणाम-स्वरूप वह न द्रवित होने वाला कूटस्थ भी द्रवित हो जाता है और जब कोई वस्तु पिघल जाय, तो आप उसे जिस भी साँचे में ढाल देंगे, उसकी वैसी ही आकृति हो जाएगी।

भक्त लोग इसी के लिये प्रयास करते हैं। देवताओं तथा मुनियों के साथ मिलकर ब्रह्माजी ने अवतार के लिए जो प्रार्थना की, उसमें उन्होंने इसी शब्द का प्रयोग किया – महाराज, जरा पिघलिए, द्रवित होइए –

द्रवउ सो श्री भगवाना।। १/१८६/४ छं

जब प्रश्न उठा कि – 'ईश्वर कहाँ है?', तो भगवान शंकरजी ने कहा – सर्वत्र है। परन्तु वह तो हस्तक्षेप नहीं कर रहा है। तो भगवान शंकर ने एक अन्य शब्द कहा – वह विरागी है। विरागी का तात्पर्य कूटस्थ-द्रष्टा के कुछ समीप-सा ही है। बोले – सब में परिव्याप्त होने पर भी वह विरागी है; और उसके साथ ऐसा अनुराग कीजिये कि वह विरागी ब्रह्म भी 'अनुरागी' बन जाय –

अग जग मय सब रहित बिरागी।
प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।। १/१८४/७

यही भक्तों का अवतारवाद है। भक्त जब व्याकुल होकर अपने अनुराग-भरे प्रेम से उन्हें पुकारता है, तो कहते हैं कि प्रभु उससे द्रवित होकर भक्त की भावना की रक्षा करने के लिए अवतार लेते हैं, दृश्य में हस्तक्षेप करते हैं, समस्याओं का समाधान करते हैं। इसलिए भगवान का अवतार किसी-न-किसी भक्त की दिव्य भावना के अनुराग का ही परिणाम है। ऐसी स्थिति में, ईश्वर के अवतरण के द्वारा मानो दो कार्य सम्पन्न होते हैं।

देवर्षि नारद के प्रसंग में एक संकेत मिलता है। नारदजी के अन्त:करण में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, सभी एक साथ उदित हो गये। सबसे अधिक क्रोध तो उन्हें भगवान पर ही आया कि – भगवान ने मेरा विवाह नहीं होने दिया, मैंने उनकी इतनी भक्ति की, निरन्तर उनके नाम-गुण का गान और प्रचार करता रहा; और मैंने उनसे केवल इतना ही तो माँगा कि मुझे अपनी सुन्दरता दे दीजिए; वह भी दो-चार दिन के लिए, ताकि मेरा विवाह हो जाय, परन्तु उतना भी नहीं दिया। फिर, जिस कन्या से मैं विवाह करना चाहता था, उससे स्वयं विवाह कर लिया। लोग मुझ पर कितना हँसे होंगे।

कुछ लोगों में यह बड़ी समस्या होती है। जिन लोगों के मन में कोई बात होती है, वे ऐसा भ्रम पाल बैठते हैं कि संसार में जो कोई देख रहा है, वह उसी की ओर देख रहा है। ऐसा व्यक्ति यदि दूसरों को हँसते देखे, तो उसे लगता है कि यह मेरे ऊपर क्यों हँस रहा है? वह बेचारा न आपको जानता है, न आप पर हँस रहा है। परन्तु यह एक मानसिक मनोभूमि होती है। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (३२)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी अनुग्रहानन्द ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

१६-६-१९५८

सेवक - मैं सोचता हूँ, जब मैंने आपको स्पर्श किया है, तब श्रीमाँ को भी स्पर्श कर रहा हूँ।

प्रेमेश महाराज - अवश्य ही, अवश्य ही। यदि तुमको विश्वास हो, तो निश्चय ही वैसा ही है।

श्रीमाँ ने मुझे दो मन्त्र दिये थे। अभी होने से मैं कहता था कि इतनी धूम मचाने की क्या आवश्यकता थी, एक मन्त्र से ही तो हो जाता। (हँसने लगे)। पहले तो दीक्षा लिया था, जप करता था। उसी मन्त्र की सिद्धि होने पर मुझे माँ का दर्शन प्राप्त हुआ। पुन: दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता थी? उस समय मैं नहीं समझ पाया, अभी समझ रहा हूँ। उस समय श्रीमाँ को कहने से ही तो हो जाता, माँ तुम्हें तो पाया, अभी तुम पर विश्वास रहने से ही हुआ।

सेवक - श्रीमाँ ने कहा कि जो लोग उनके पास आएँगे, ठाकुर अन्तिम समय में उन लोगों का हाथ पकड़ कर ले जाएँगे। जो लोग श्रीमाँ के शिष्य हैं, जैसे आप लोग हैं, उन लोगों को तो मुक्ति के लिये कुछ सोचना नहीं है। किन्तु हम लोग भी तो माँ के पास आये हैं, यह सत्य है कि नहीं?

महाराज - यदि तुम सोचते हो कि माँ के पास आए हो, उनके पास हो, तो ठीक ही है। तुम माँ कहने से क्या समझते हो? क्या माँ की मृत्यु हो गयी? यदि कोई माँ के पास आकर मुक्ति माँगता है, तो उसे मुक्ति मिलेगी। नहीं तो, यदि माँ जबरदस्ती मुक्ति देती हैं, तो अत्याचार करना हो जायेगा।

(मैं) **सेवक** - जो लोग माँ के शिष्य हैं – संन्यासी या गृहस्थ, वे लोग मुक्त हैं तो?

महाराज - वे लोग मुक्त तो हैं ही, किन्तु जो लोग माँ का स्नेह पाकर भी सम्मान के लिये भूखे हैं, उन लोगों को और भी एक-दो जन्म लगेंगे और क्या ! मान-सम्मान उच्च मन की अन्तिम दुर्बलता है (Fame is the last infirmity of the noble mind.)। हो सकता है कि आश्रम के एक साधु बैठे-बैठे खा रहे हैं, किन्तु एक मजिस्ट्रेट (Magistrate) से भी अधिक बुद्धिमान हैं। क्योंकि वे साधु मिथ्या जगत को छोड़कर, उससे दूर हटकर खड़े हैं। एक-दो जन्मों के बाद उनकी मुक्ति होगी। कोई कितना भी विद्वान क्यों न हो, ठाकुर और उनके पार्षदों को सहजता से पहचानना कठिन है।

१७-७-१९६०

प्रश्न - प्रयत्न करके भी मन को नियन्त्रित क्यों नहीं कर पाता?

उत्तर - हमेशा मन को आत्मा से संयुक्त रखने पर ही कोई दु:ख नहीं होगा। किन्तु हमारा मन क्यों नहीं चाहता हैं? क्योंकि हमलोगों ने जन्म-जन्मान्तरों से इसके विपरीत चिन्तन किया है, अपने मन को आत्मा से संयुक्त नहीं रखा, इसलिये हम मन को नियन्त्रित नहीं कर पा रहे हैं। जिन लोगों ने पूर्व-जन्मों में तपस्या कर प्रयत्न किया है, उन्हें इस जन्म में बचपन से ही विषय सम्बन्धी सुखों से वैराग्य हो जाता है और ईश्वरीय बातों में व्याकुलतापूर्वक रुचि उदित होती है। बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द) तथा खोका महाराज (स्वामी सुबोधानन्द) को बचपन से पढ़ने-लिखने में अरुचि थी। केवल शशि महाराज (स्वामी रामकृष्णानन्द), शरत महाराज (स्वामी सारदानन्द) एवं स्वामीजी ने पढ़ाई-लिखाई की थी। ठाकुरजी ने कहा है, "माँ, मेरी विषय-बुद्धि में वज्राघात हो।"

प्रश्न - कर्म में प्रवृत्त होने पर थोड़ी अपराध भावना आ जाती है। कहाँ तक हम लोगों का अपराध क्षम्य है?

सेवक - ये सब बातें अभ्युदयार्थी के लिये हैं। संन्यासी, जिसने सब कुछ त्याग किया है, जिसके साथ संसार का कोई सम्बन्ध ही नहीं है, फिर उसके लिये कौन सा पाप-कर्म है ! वह कार्य नहीं करता है, वह तो उपासना करता है? यदि कर्म को योग में नहीं परिणत कर सका, तो वह कैसा साधु है? यद्यपि कार्य के लिये थोड़ा सा इधर-उधर किया जा सकता है, किन्तु बहुत सावधानी से करना चाहिये, जिससे कोई अपराध न हो जाय। हमारे चिकित्सालय में दो

लोग कार्य करते थे। वहाँ नियम था कि हमलोग १०० रुपए देंगे और सरकार १०० रुपये देगी। किन्तु हमलोगों को १०० रुपये देने की क्षमता नहीं थी। क्या करूँ? उनलोगों के कार्य के लिये १०० रूपये दिया । असली बात है - निर्वासना होना।

प्रश्न - संन्यासी ऐसा आचरण करेगा, जिससे कोई उसकी निन्दा न कर सके, यही तो?

महाराज - नहीं, संन्यासी अपने संन्यास-मार्ग में चलेगा। उससे चाहे निन्दा हो या स्तुति। उसके लिये तो दोनों ही त्याज्य हैं। तुम बताओ तो, बचने के लिये क्या करना होगा?

सेवक - इस संसार सब कुछ चुपचाप सहन करना होगा।

महाराज - नहीं, वह कापुरुषता है। उद्वेगरहित होकर रहना होगा। यह संसार जल जाय, मर जाय, स्वर्ग हो, श्मशान हो, मैं उत्तेजित नहीं होऊँगा।

बाह्य-वस्तुओं के सम्बन्ध में कितने आविष्कार हो रहे हैं। वैसा हमारे आन्तरिक जीवन के सम्बन्ध में नहीं हो रहा है।

१८-७-१९६०

सेवक पास में बैठकर गीता का अध्ययन कर रहा था।

महाराज - गीता के 'बुद्ध्या धृतिगृहीतया' अर्थात् ग्रहण और परित्याग के सम्बन्ध में सुदृढ़ निश्चय होना। इस संसार के वस्तुओं से मन को हटा लेना। उपनिषदों में उच्च-स्वर से घोषणा कर रहे हैं और कातर भाव से निवेदन कर रहे हैं कि तुम्हारे पैरों के नीचे सोना है। किन्तु इच्छा नहीं होने से, तो वह मिल नहीं सकता। उदान वायु को पुरोहित और मैं यजमान हूँ, ऐसा कहा गया है। जैसे पुरोहित यजमान को स्वर्ग के मार्ग पर ले जाता है, वैसे ही उदानवायु हमेशा हमें सुषुप्ति में, मुक्ति-मार्ग में ले जाती है। तब कोई कर्तव्य-बोध नहीं रहता है, विचार नहीं रहता और मन पूर्ण रूप से प्रलीन रहता है। किन्तु दुःख केवल यही है कि वह माया के अन्तर्गत है। उसी माया को पार करने से ही मुक्ति होती है।

विश्वास दृढ़ नहीं रहने से बल-पूर्वक कुछ नहीं किया जा सकता है। भोग की समाप्ति नहीं होने से ईश्वर में प्रेम नहीं होगा। "विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।" यह तो तुम अपने सामने ही देख रहे हो। माँ के दो लड़के हैं, कितने आगे बढ़ सकते थे। किन्तु दोनों ही संसार का भोग कर रहे हैं। एक लड़का थोड़ा सुसंस्कृत है, इसलिये ठाकुरजी के नाम का प्रचार और सम्मान-यश, यही सब लेकर संसार का भोग कर रहा है। दूसरा लड़का उतना सुसंस्कृत नहीं है, इसलिये वह आश्रम और भवन बना कर मान-यश लेकर संसार भोग कर रहा है। एक ने खीर खायी और दूसरे ने सूखी मछली खायी। दोनों का स्वाद दो प्रकार का है। एक दूसरे की निन्दा करता है, दूसरा उसकी निन्दा करता है। किन्तु ज्ञानी की दृष्टि में दोनों समान हैं। ज्ञानी देखता है कि दोनों ही रसनानन्द में हैं।

कई बार मन को बल-पूर्वक नियन्त्रित करने से कुछ देर के लिये मन नियन्त्रित हो जाता है, किन्तु फिर छोड़ देने से ही बिखर जाता है। मैंने तो ऋषिकेश में दो-तीन बार प्रयास किया। तब लगता था कि मन को अच्छी तरह से नियन्त्रित कर लिया हूँ, किन्तु कहाँ, बेलूड़ मठ में आया, ढाका में मुझे भेज दिये। फिर भक्त-संग और नाम-यश में उलझ गया।

यद्यपि मेरा शरीर दुर्बल था। इस्पात के जैसे स्नायुओं और लोहे की तरह मजबूत मांस-पेशियों की आवश्यकता है। काष्ठवत् अचल बैठ कर 'न किंचिदपि चिन्तयेत्' (विचाररहित) करना होगा। हमारे देश के शास्त्रों में शरीर को अच्छा, सशक्त करने पर बहुत महत्व दिया गया है। हठयोग के द्वारा कैसे समाधि तक हो जाती है ! किन्तु देखा गया है कि प्रायः अन्त में अभ्युदय में चला जाता है। क्या मन का बाहरी विषयों से नियन्त्रण एक दिन में होता है? पूर्व-संस्कारों के कारण मन के ये सारे खेल चल रहै हैं। बचपन से चेष्टा करते-करते मन की विपरीत दिशा हो सकती है, तब सम्भव हो सकता है।

उस समय शिष्य आठ वर्ष की आयु में गुरु के पास आता था और ध्यान करने का प्रयास करता था। हृदय के अन्दर ज्योति है, '...धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' - इस प्रकार मन का नियन्त्रण सम्भव हो सकता है।

हमारे देश में वैष्णवों ने श्रीराधा-कृष्ण को एकदम घरेलू व्यक्ति बना दिया है। सामान्य लोगों के लिये मन-नियन्त्रण का यह अच्छा उपाय है – एक विधवा ने लड़के के मर जाने के बाद गौरांग को ही अपना लड़का मान लिया। यही मन के नियन्त्रण का सहज उपाय है। किन्तु यह साधारण लोगों के लिए है। (**क्रमशः**)

साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद (६)

स्वामी आत्मानन्द

(स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनके द्वारा कलकत्ता में प्रदत्त इस प्रेरक व्याख्यान को स्वामी प्रपत्त्यानन्द द्वारा सम्पादित कर विवेक ज्योति के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

इस एक श्लोक में कठोपनिषद के, साधना के सारे सूत्र संक्षेप में कह दिये गए और वे ही सूत्र यहाँ पर भिन्न रूप में दिये गये हैं। वहाँ कठोपनिषद में साधक के द्वारा पर क्या कहा जा रहा है? साधक कहता है – पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू ... – ये जो स्वयम्भू हैं, इन्होंने इन्द्रियों को बहिर्गामी बनाकर मानो उन्हें नष्ट कर दिया है। किसी ने पूछा कि ऐसा क्यों कह रहे हो? क्या कोई नष्ट करने के लिए बनाएगा?

साधक ने कहा – हाँ ! जैसे माँ किसी शिशु को जन्म दे और उसको नष्ट कर दे, ऐसे ही स्वयम्भू ने इन इन्द्रियों को बनाया और बहिर्गामी बनाकर नष्ट कर दिया।

साधक से कहा गया कि तुम अपनी बात ठीक से समझाओ, तो साधक ने कहा – देखो ! ये इन्द्रियाँ बहिर्गामी बनी हैं, इसलिए बाहर की ओर देखती हैं, भीतर की ओर नहीं देखती हैं। उपनिषद साहित्य में ये दो शब्द हैं, पराक् (बाहर) और प्रत्यक् (भीतर)।

उस साधक ने क्या किया? वह धीर था, उसमें धैर्य था, साहस था। उसने प्रत्यगात्मन् – प्रत्यक् आत्मा को, अन्तस्थ आत्मा को, जो सत्य है, उसे देख लिया। कैसे देखा? आवृत्तचक्षुः – आँखों को बन्द करके उसने उस भीतर छिपे हुए तत्त्व को देख लिया। यहाँ पर आँखें उपलक्षण हैं। सभी इन्द्रियों को उसने भीतर की ओर मोड़ दिया। क्यों मोड़ दिया? अमृतत्वमिच्छन् – अमरता की इच्छा करता हुआ। अमरता का तात्पर्य क्या है? एक तात्पर्य तो यह है, जो यहाँ पर कहा गया है कि मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो। उसके पश्चात् ही वह अमर हो गया, उसके आने-जाने का जो चक्कर था, छूट गया। उसका दूसरा तात्पर्य है – इसी जीवन में वह सारे बन्धनों को काट लेता है और जीवनमुक्त होकर विचरण करता है। ये दोनों ही अर्थ केनोपनिषद में आए हैं। केनोपनिषद में है – इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। – इसी जीवन में उस सत्य को जान लो तो महान लाभ है और नहीं जाना तो महान विनाश है।

अमरत्व के सन्दर्भ में तो यहाँ पर भी ठीक वही बात प्रकारान्तर से कही जा रही है। शिष्य ने पूछा कि वह तत्त्व कौन-सा है, जिसकी इच्छा और प्रेरणा से ये इन्द्रियाँ काम करती हैं, मन काम करता है, तो गुरु ने कहा कि आँखों की आँख, कानों का कान, प्राण का प्राण, मन का मन, वाणी की वाणी। यह भीतर की ओर ले जाने का प्रयास है। जैसे एक सामान्य भौतिक उदाहरण, लौकिक उदाहरण है – मान लो किसी से पूछा जाय – अच्छा, वह बल्ब, किसकी इच्छा से और किसकी प्रेरणा से जलता है? पंखा किसकी इच्छा से चलता है? हीटर किसकी इच्छा से जलता है? कूलर किसकी इच्छा से चलता है, प्रेरित होता है? तब कोई उत्तर दे – बल्ब का एक बल्ब है, हीटर का एक हीटर है, कूलर का एक कूलर है? तब वह क्या है? वह बिजली है। बिजली की इच्छा और प्रेरणा से बल्ब जलता है, हीटर जलता है, कूलर चलता है। ठीक इसी प्रकार अध्यात्म के क्षेत्र का यह प्रश्न है कि किसकी इच्छा और प्रेरणा से इन्द्रियाँ काम करती हैं, तो गुरु ने बताया कि आँखों की आँख, कानों का कान आदि। भीतर चलने को कहा गया।

अच्छा गुरुजी ! आपने तो कहा कि आँखों की आँख, कानों का कान, मन का मन। तो फिर उसको कैसे जानें? क्या हम आँखों की आँख को देख सकते हैं? कानों के कान को सुन सकते हैं? वह मन का मन है, तो क्या हम उसके सम्बन्ध में कुछ मनन कर सकते हैं। प्राणों का प्राण है, क्या हमें उस प्राण के स्पन्दन का अनुभव हो सकता है? वह वाणी की वाणी है, तो क्या उसे बोलकर समझाया जा सकता है? गुरुजी ने कहा कि नहीं वत्स !

न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ।।३।।

तीसरे मन्त्र में मानों इस प्रश्न का उत्तर है - कहते हैं कि न तत्र चक्षुर्गच्छति, वहाँ आँखें नहीं जा पाती हैं। न वाक् गच्छति नो मनः, न वहाँ वाणी जा पाती है, न मन जा पाता है। हम भी नहीं जानते हैं – न विद्मः, न विजानीमः

- हम यह भी नहीं जानते कि कैसे तुम्हें समझा दें। हमें क्यों समझ में नहीं आता है? इसलिए नहीं आता है कि अन्यत् एव विदिताद्, वह विदित से अन्य है। जैसे विदित की एक श्रेणी है। हम जिन-जिन पदार्थों को जानते हैं, वे विदित की श्रेणी में आते हैं, पर आत्मतत्त्व विदित की श्रेणी से भिन्न हैं, इसलिए कहा गया कि वह विदित से भिन्न हैं। तो फिर कह दीजिए कि उसको जाना ही नहीं जा सकता। नहीं, नहीं, ऐसी भी बात नहीं है। वह अविदित से ऊपर है, अविदित से परे है – अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे – ऐसा हमने अपने पहले के गुरुओं से सुना है, जहाँ से ज्ञान की परम्परा चली है, जो अपने पूर्व पुरुष हैं, जिन्होंने हमारे प्रति इसका आख्यान किया था।

अब यह वैतर्किक प्रणाली से उस तत्त्व की ओर ले जाने की चेष्टा है। यहाँ पर गुरु ने कह दिया कि तुम कहते हो – कानों का कान है, तो क्या सुनकर उसे जाना जा सकता है? नहीं ! आँखों का आँख है, तो क्या आँखों से देखकर जान लें? नहीं? क्यों नहीं? क्योंकि वहाँ पर आँखें नहीं जातीं, वाणी नहीं जाती, इसलिए वाणी के द्वारा भी बोल कर नहीं समझा सकते। मन ही नहीं जाता है। इसलिए वाणी भी लौट आती है, अत: अवाङ्मनसगोचरम् कहा गया है। यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह – जहाँ से वाणी मन के साथ लौट आती है, क्योंकि मन भी प्राप्त नहीं कर सकता है? मन जहाँ-जहाँ जाता है, वाणी उसका अनुवर्तन करती है और मन जिसको अपना विषय बनाता है, वाणी उसे शब्दबद्ध कर दिया करती है, पर जहाँ मन ही नहीं जाता, तो वाणी कैसे जाए? मन उसे बिना पाए लौटकर आ गया, इसलिए वाणी भी उसके साथ वापस आ गयी।

इस ढंग से उस तत्त्व के सम्बन्ध में यहाँ पर कहा गया है। यहाँ उसी आत्मतत्त्व स्वरूप का प्रवचन है। वह चैतन्य तत्त्व क्या है? यह मानों भीतर प्रवेश कर पाने की चेष्टा है। जैसे श्रीरामकृष्ण देव एक बात कहते थे – देखो ! संसार में सारी चीजें जूठी हो गयीं, लेकिन एक ब्रह्म वस्तु ही जूठी नहीं हुई। आज तक कोई बोल कर बता नहीं सका। जूठी का अर्थ है, यदि वस्तु को ओठों से लगा दें, तो वस्तु जूठी हो जाती है। अभी तक कोई बोल कर नहीं बता सका कि ब्रह्म कैसा है? इसीलिए ब्रह्म-वस्तु जूठी नहीं हुई। संसार की सारी चीजें जूठी हो गईं, शास्त्र जूठे हो गए, किन्तु ब्रह्म वस्तु जूठी नहीं हुई। ठीक यहाँ पर वही बात है। कोई बोल कर नहीं बता सका, तो तुम्हें मैं कैसे समझाऊँ? इसीलिए बहुत कठिनाई है। जिसको वाणी के द्वारा बताया नहीं जा सकता, तो उसे मैं कैसे समझाऊँ कि वह तत्त्व कैसा है? वह विदित से भिन्न और अविदित से ऊपर है। इस प्रकार समझाते हुए वे धीरे-धीरे आगे चलकर बतायेंगे कि जो ब्रह्म है या आत्मवस्तु है या चैतन्य है, वह अनुभूति का विषय है, वाणी का विषय नहीं है। मन जाकर उसके स्वरूप का आकलन नहीं कर पाता है। जैसे श्रुतियों में आप पढ़ेंगे। कभी तो यह कहा जायेगा, जैसे यहाँ पर कहा गया है कि मन वहाँ पर नहीं जा पाता है और फिर यह भी कहा गया है कि मनसैव अनुद्रष्टव्य मन के द्वारा ही उसका दर्शन किया जाता है। अब ये विरोधी बातें मालूम पड़ती हैं। एक स्थान पर कहो कि मन वहाँ नहीं जाता है और दूसरे स्थान पर कहो कि वह मन के द्वारा ही, अनुद्रष्टव्य है, अनुभव में आता है, तो इसका क्या अर्थ है? तो उसका आचार्य शंकर ने बहुत सुन्दर अर्थ किया है।

जब मन शुद्ध हो जाता है तब वह उस तत्त्व के दर्शन करने में समर्थ होता है। आज हमारा मन मलिन है, मलिन मन से उसका अनुभव नहीं होता, पर किससे होता है? जब बुद्धि सूक्ष्म हो गयी, मन पवित्र हो गया, तब वह उस तत्त्व को देखने का अधिकारी होता है। मन के भीतर में अनन्त शक्ति है, पर उस शक्ति का आज हमें बोध नहीं हो रहा है। क्यों नहीं होता है? इसलिये कि मन के बहुत से अंग हैं, मन बिखरा हुआ है, इसलिये उसमें भोथरापन है, पैनापन नहीं है, पर यदि हम किसी उपाय से मन को एकाग्र करें और एकाग्र करके उसे अपने ऊपर लगा दें, अपने ऊपर माने? भीतर ही, मन को हमने एकाग्र किया और भीतर ही हमने, मन के ऊपर उसे लगा दिया, केन्द्रित कर दिया। तब क्या होता है। तब उसमें बड़ी भेदन शक्ति आ जाती है और वह फिर अपनी ही परतों को काटने लगता है। यह विलक्षण सिद्धान्त है और साधना की प्रक्रिया है, अध्यात्म के क्षेत्र में। जैसे हमारा मन एकाग्र तो होता है पर अपनी रुचि के विषय में होता है। यदि मुझे संगीत में रुचि है तो मैं अपने मन को संगीत में एकाग्र करता हूँ। यदि चित्रकारी में रुचि है तो मैं मन को चित्रकारी में एकाग्र करता हूँ।

(क्रमशः)

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

५४. पूर्ण नि:स्वार्थता – नेवले की कथा

पूर्ण रूप से स्वार्थत्याग का एक दृष्टान्त निम्नलिखित कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है – कुरुक्षेत्र के युद्ध के बाद पाँचों पाण्डवों ने एक विराट यज्ञ किया। उसमें निर्धनों को बहुत-सा दान दिया गया। सभी लोगों ने उस यज्ञ की महत्ता एवं ऐश्वर्य पर आश्चर्य प्रकट किया और कहा कि ऐसा यज्ञ संसार में इसके पहले कभी नहीं हुआ था। परन्तु यज्ञ सम्पन्न होने के बाद उस स्थान पर एक छोटा-सा नेवला आया। उसका आधा शरीर सुनहला था और बाकी आधा भूरे रंग का था। नेवला उस यज्ञ-मण्डप की धरती पर लोटने लगा। थोड़ी देर बाद उसने देख रहे लोगों से कहा, "तुम सभी झूठे हो। यह तो कोई यज्ञ नहीं था।" लोग बोल उठे, "क्या! तुम कहते क्या हो, यह कोई यज्ञ ही नहीं है? तुम जानते नहीं कि इस यज्ञ में गरीबों को कितना धन तथा कितने हीरे-जवाहरात बाँटे गये हैं; और वे सभी सम्पन्न और खुशहाल हो गये हैं? यह तो एक ऐसा अद्भुत यज्ञ था, जैसा शायद ही किसी मनुष्य ने अब तक सम्पन्न किया हो।"

इस पर नेवला बोला, "तो फिर सुनो। एक निर्धन ब्राह्मण अपनी पत्नी, पुत्र और पुत्र-वधू के साथ एक छोटे से गाँव में निवास करता था। वे लोग बड़े गरीब थे और पूजा-पाठ से उन्हें जो कुछ मिल जाता, उसी पर उनका जीवन-निर्वाह किया करते थे। एक बार उस अंचल में लगातार तीन वर्षों तक अकाल पड़ा और इसके फलस्वरूप उस निर्धन ब्राह्मण की कठिनाइयों में काफी वृद्धि हो गयी। एक बार तो पूरे परिवार को कई दिनों तक उपवास करना पड़ा। फिर एक दिन वह ब्राह्मण भाग्यवश कहीं से थोड़ा-सा जौ का आटा मिल गया। उसने परिवार के चारों सदस्यों के लिये उसके चार हिस्से कर दिये। उन लोगों ने उस आटे से रोटियाँ बनायीं और ज्योंही उसे खाने बैठे कि किसी ने द्वार खटखटाया। पिता ने उठकर दरवाजा खोला, तो देखा कि बाहर एक अतिथि खड़ा है। भारत में अतिथि को बड़ा पवित्र – देवता के समान माना जाता है। उस समय के लिए मानो वह 'देवता' ही हो जाता है और उसके साथ वैसा ही व्यवहार भी किया जाना भी उचित माना जाता है।

अत: उस गरीब ब्राह्मण ने कहा, 'महाराज, भीतर आइये, आपका स्वागत है।' उसने अपने हिस्से का भोजन अतिथि के समक्ष रख दिया। अतिथि ने उसे शीघ्र ही खा लिया और बोला, 'अरे, आपने तो मेरी हालत और भी बिगाड़ दी। मैं दस दिनों का भूखा हूँ और इस थोड़े-से भोजन ने तो मेरी भूख और भी बढ़ा दी है।'

तब स्त्री ने अपने पति से कहा, 'आप मेरा भी भाग दे दीजिए।' परन्तु पति बोला, 'ऐसा कदापि नहीं होगा।'

परन्तु पत्नी अपनी बात पर अड़ी रही और बोली, 'यह निर्धन भूखा व्यक्ति हमारे घर आया है। गृहस्थ के रूप में हमारा कर्तव्य है कि हम इन्हें भोजन कराएँ। अब चूँकि आप इन्हें और कुछ नहीं दे सकते, अत: पत्नी के नाते मेरा कर्तव्य है कि मैं इन्हें अपना हिस्सा भी दे दूँ।'

ऐसा कहकर उसने अपना हिस्सा भी अतिथि को दे दिया। अतिथि ने उसे भी खा लिया और बोला, 'मेरा पेट तो अभी भी भूख से जल रहा है।' तब पुत्र ने कहा, 'आप मेरा हिस्सा भी ले लीजिए, क्योंकि हर पुत्र का यह धर्म है कि वह पिता के कर्तव्यों को पूरा करने में उनकी सहायता करे।'

अतिथि ने वह भी खा लिया, परन्तु इसके बावजूद उसकी क्षुधा शान्त नहीं हुई। अत: पुत्रवधू ने भी उसे अपना हिस्सा दे दिया। सब कुछ खाने के बाद, अब अतिथि की भूख मिट चुकी थी और उसने पूरे परिवार को आशीर्वाद देते हुए विदा ली।

भूख से पीड़ित उन चारों व्यक्तियों की उसी रात मृत्यु हो गयी। उसी आटे के कुछ कण धरती पर इधर-उधर बिखरे पड़े थे। जब मैंने उन्हीं पर लोट लगायी, तो मेरा आधा शरीर सुनहला हो गया, जैसा कि तुम लोग देख ही रहे हो। उस समय से मैं, यह आशा लेकर सारी दुनिया का भ्रमण कर रहा हूँ कि शायद मुझे अन्यत्र भी कहीं वैसा यज्ञ देखने को मिल जाय; परन्तु वैसा यज्ञ मुझे कहीं भी देखने को नहीं मिला। अन्यत्र कहीं भी मेरा बाकी आधा शरीर सुनहला नहीं हो सका। इसीलिए तो मैं कह रहा था कि यह तो कोई यज्ञ ही नहीं है।'

दान का यह भाव भारत से धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है; महापुरुषों की संख्या घटती जा रही है। बचपन में जब मैंने

(शेष भाग पृष्ठ क्र. २९३ पर)

साधक-जीवन कैसा हो? (६)

स्वामी सत्यरूपानन्द,
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(ईश्वरप्राप्ति के लिये जिज्ञासु साधना में प्रयत्नशील रहते हैं। किन्तु प्राय: वे उन चीजों की उपेक्षा कर जाते हैं, जिन छोटी-छोटी चीजों से साधक-जीवन ईश्वर की ओर अग्रसर होता है। एक साधक का जीवन कैसा होना चाहिये और उसे अपने जीवन में किन-किन चीजों का ध्यान रखना चाहिये, इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस व्याख्यान में चर्चा की गयी है। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर द्वारा आयोजित आध्यात्मिक शिविर में मार्च, २०११ में दिया था। विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु इसका टेप से अनुलिखन नागपुर की सुश्री चित्रा तायडे और कुमारी मिनल जोशी ने तथा सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

साधक इन छोटे-छोटे शब्दों को याद रखें। साधक के जीवन में एक वृत्ति हमें प्रबल करनी है, जिसका नाम है परिणामदर्शी बुद्धि ! विस्मृति–अपरिणामदर्शी कठिन शब्द है। हम साथ-साथ साधक के जीवन के लक्षण लेकर चलें। क्योंकि वे अलग नहीं है। परिणामदर्शी बुद्धि यह बहुत सरल शब्द है। मराठी में भी होगा। उसका क्या परिणाम होने वाला है? परिणाम होने के पहले जो बुद्धि उसको देख ले, वह परिणामदर्शी बुद्धि है। परिणाम होने के बाद जो हमको बताए वह भ्रष्ट बुद्धि है। मैं भ्रष्ट बुद्धि हूँ। आप अपना-अपना निर्णय कर लीजिए कि आप परिणामदर्शी बुद्धि हैं या भ्रष्ट बुद्धि हैं।

इसके लिये हमें इन्द्रियों की आवृत्ति से विरत होना पड़ेगा। कैसे होना पड़ेगा? यह धीरे-धीरे होगा। सबसे प्रबल इन्द्रियों को पहले छोड़ देना चाहिए। कल से ही अगर मैं यह सोचूँ कि जिह्वा और स्पर्श-इन्द्रिय का कल से मैं एकदम स्वामी हो जाऊँगा, तो कदाचित् अनन्त जन्मों में भी न हो पाऊँ। अत: हमें सहजतम और सरलतम से प्रारम्भ करना चाहिये। कैसे? बहुत से बच्चों के माता-पिता हम लोगों के पास आते हैं। यहाँ आप लोगों के पास भी आते होंगे। बहुत से लोग यही शिकायत करते हैं कि महाराज ये बच्चे-बच्चियाँ सबेरे १०-११ बजे सोकर उठते हैं। क्यों सोकर उठता है ११ बजे? क्योंकि रात ११ बजे से रात ३ बजे तक टी.वी. देखते हैं। तब तो दिन को ११ बजे उठेंगे ही। ऐसे बच्चे-बच्चियों के लिये अभिभावकों ने जेहादियों के समान एक फतवा निकाल दिया कि खबरदार ! कल से १० बजे सोना पड़ेगा और सुबह ५ बजे उठना पड़ेगा। तो अगर बच्चा बड़ा है, समझदार है, तो थोड़ा-बहुत अमल करेगा। नहीं तो, परिणाम बुरा भी हो सकता है। कभी-कभी कोई-कोई बच्चे या बच्चियों को लेकर आते हैं। तो मैं उनके माँ-बाप के सामने ही बच्चों या बच्चियों से कहता हूँ कि तुम्हारी दिनचर्या कैसी होनी चाहिये। सबसे पहली बात उन बच्चे-बच्चियों को उनके माँ-बाप के सामने बताता हूँ कि बेटा तुम मम्मी पापा की बात न सुनना। कहना कि बाबा ने कहा है कि तेरे २० घण्टों के कार्यक्रम में सबसे पहला कार्यक्रम दिन में छह घण्टे टी.वी. देखना है, किन्तु तुम एक साथ मत देखो। उसको टुकड़ों में विभाजित कर लो। दो घण्टे सबेरे टी.वी. देखो, फिर अपनी पढ़ाई-लिखाई जो करना है, उसे करो। दोपहर को फुरसत रही, तो फिर दो घण्टे देखो, फिर अपना कार्य करो। रात को दो घण्टा देखो। बच्चों को बहुत अच्छा लगता है। बच्चे मम्मी को कहते हैं, देखो बाबाजी बोलते हैं, छह घण्टे टी.वी. देखो। अब जो बच्चा इतना कर सकता है, लगभग सभी कर सकते है। वह सोचता है कि बाबाजी ने तो मना नहीं किया। किन्तु जब मैं उससे दुबारा मिलूँगा, तो कम करने को बोलूँगा। लड़का खुद ही सोचता है कि ये मेरे दादा-नाना के समान हैं। तब वह खुद ही कहता है, बाबा, अब मैं चार घण्टे ही टी.वी. देखूँगा। इस प्रकार धीरे-धीरे उसमें सुधार हो जाता है। क्यों ऐसा हुआ?

आप सब लोग श्रीरामकृष्ण की जीवनी पढ़ते-सुनते हैं। कितने शराबी-कबाबी उनके पास आये थे ! सुरेन्द्र आये थे, दाना काली आये थे, गिरीश घोष आये थे, नटी विनोदनी आयी थी। बहुत से ऐसे लोग थे जिन्हें हम दुश्चरित्र कहते हैं, पतित समझते हैं, ऐसे लोग आये थे। हम परदे में छिपे हैं, इसलिये किसी को मालूम नहीं होता है। मन से तो हम उनसे ज्यादा पतित हैं। पर आप एक भी उदाहरण बता दीजिये कि ठाकुर ने किसी से कहा कि ऐसा मत करो। शराबी को ऐसा नहीं कहा कि तुम शराब मत पीना। किसी को किसी काम के लिये मना नहीं किया। किन्तु वे लोग लज्जा में, उनके प्रेम से सुधर गये।

ठाकुर के एक भक्त थे सुरेन्द्र मित्र। कभी-कभी ठाकुर उनको सुरेश भी कहते थे। ठाकुर के पास आने वाले एक

दूसरे भक्त थे, उनके वे साथी थे। वे बहुत शराबी थे। ठाकुर को और दूसरे लोग भी सलाह देते कि अरे शराबी को आप आने देते हैं ! वह शराब पीता है ! कितना बदनाम है वह ! ठाकुर ने उनको कभी मना नहीं किया। एक दिन ऐसे ही अपने आपको बड़ा शुद्ध सोचनेवाले कई लोग बैठे हैं। सुरेन भी वहाँ बैठे हैं। ठाकुर कहते हैं, अरे सुरेन ! तू इतना मत पीओ कि तेरे पैर लड़खड़ाने लगें। अब देखिये ठाकुर ने उन्हें पीने से मना नहीं किया। केवल कम पीने को कहा। नहीं तो, यदि श्रीरामकृष्ण कहते – अरे हम तुम्हारी सूरत नहीं देखेंगे, तुम शराब पीते हो, निकल जाओ यहाँ से ! तो शायद सुरेन्द्र यह कहते हुए निकल जाते कि बड़ा परमहंस बना है ! मैं भी देख लूँगा ! सुरेन्द्र वहाँ से चले जाते, उनके जीवन में सुधार नहीं होता। किन्तु श्रीरामकृष्ण ने अपने प्रेम से धीरे-धीरे इन सबके जीवन को बदल दिया। ऐसे ही हम अपने बच्चों के साथ कभी-कभी कठोरता करते हैं, इससे बच्चे सुधर नहीं पाते। इसलिये हमें अपने जीवन में अभ्यासगत प्रबल स्पर्श आदि आवृत्तियों को तत्काल छोड़ने का निर्णय नहीं करना चाहिये। उन्हें धीरे-धीरे छोड़ने का प्रयत्न करना चाहिये – **शनैः पन्थाः शनैः कन्थाः शनैः पर्वतलंघनम्।** धीरे-धीरे जाने के लिये क्या करना पड़ता है? बहुत से ऐसे आकर्षण हैं, जिनको हम अनायास छोड़ सकते हैं। मैं कुछ अपने मित्रों को जानता हूँ।

एक मित्र थे उनकी अखबार पढ़ने की बहुत आदत थी। बहुत सम्पन्न थे। दस अखबार मँगवाकर पढ़ते थे। अंग्रेजी, हिन्दी और अपनी मातृभाषा में अखबार पढ़ने का बड़ा शौक था उन्हें। उनकी पत्नी बड़ी परेशान रहती थीं। परेशान क्यों न हों ! अब वे रिटायर्ड हो चुके थे। बच्चे अमेरिका-इग्लैंड में थे। बेटियाँ भी दूसरी जगह हैं। घर में केवल ये पति-पत्नी ही हैं। अब वे बेचारी बूढ़ी हैं। बहुत साल पहले जब विवाह हुआ था, तो बहुत अच्छी बात थी। विवाह हुआ था तो चन्द्रमुखी थीं। जीवन थोड़े दिन अच्छा चला। दो-चार दिन की बात हो तो अलग, किन्तु जीवन भर साथ रहना है। अब धीरे-धीरे वर्ष-दो वर्ष बीत गए। एकाध बच्चा हुआ तो चन्द्रमुखी से सूर्यमुखी हो गयीं। चन्द्रमुखी को तो देख भी सकते हैं, किन्तु अब सूर्यमुखी ! उगता सूरज थोड़ी देर तक ठीक है, किन्तु बारह बजे का सूरज सिर पर आया, तो कैसे देखोगे? फिर धीरे-धीरे बच्चे बड़े हुए। उन बच्चों का भी विवाह हो गया ! सब अपनी-अपनी जगह पर चले गये। अब ये बूढ़ा-बूढ़ी बचे ! तब पत्नी हो गयी ज्वालामुखी। केवल चन्द्रमुखी सब अन्त में ज्वालामुखी हो जाती हैं। जितने इन्द्रियों के भोग हैं न, ये सभी चन्द्रमुखी से शुरु होते हैं और ज्वालामुखी से समाप्त होते हैं। तो बाबा, क्यों ज्वालामुखी होने दें। वे बचारे ऐसी ज्वालमुखी के ज्वाला में थे। उनकी पत्नी मुझसे उम्र में छोटी हैं। वे मुझसे कहने लगीं। देखिए हम ही दो लोग घर में हैं। ये दस अखबार रोज लेते हैं और जब भी देखो अखबार पढ़ते रहते हैं। वे लोग अच्छे सम्पन्न हैं। मैंने कहा क्यों भाई, ऐसा क्यों? तो वे कहने लगे - अरे महाराज क्या करें ! जब इनके पास बैठता हूँ, तो ये दुनियाभर की सब बातें सुनाने लगती हैं। अब हम क्या सुनायें इनको? ये वही बातें जो हमलोग बचपन में अपने शिक्षक से पढ़ते थे – एक राजा था। एक राजकुमारी थी। वह दूर रहती थी आदि, यही सब सुनाती हैं। ये हमेशा भूतकाल में ही बात करती हैं। अरे आप १० साल पहले ऐसे थे। तो आप भी तो पाँच-दस साल पहले ऐसी थीं। अभी जैसी हैं, वैसी नहीं थीं। तब क्या करना चाहिये? तब उनसे मैंने कहा, आप एक हिन्दी और एक अंग्रेजी में दो अखबार मँगवाइये। वे सरल हैं। उन्होंने हमारी बात मान ली। उन्होंने कहा कि उतनी ही मेरे लिये काफी है। मैं तो टाइमपास में ही पढ़ता था। उन्होंने दस अखबार पढ़ना छोड़ दिया। वे सरल हैं। मैंने कहा अब दीदी से लड़ाई-झगड़ा बन्द कीजिये। उन्होंने दस अखबार पढ़ना कम किया, तो थोड़ा समय बचने लगा और तब आपस में बातचीत होने लगी।

वे भक्त हैं। उनकी पत्नी को हम लोग दीदी कहते हैं। उनको मैंने कहा, दीदी ! जब वे अखबार पढ़ते हैं, तो तुम उनके पास बैठकर श्रीरामकृष्णकथामृत पढ़ा करो, माँ की जीवनी पढ़ो, माँ की कथाएँ पढ़ो, श्रीरामकृष्ण देव और उनके शिष्यों की बातें पढ़ो, भागवत पढ़ो। वे ऐसा करने लगीं। अब वे बूढ़ा-बूढ़ी आश्रम में आते हैं। अब काफी वृद्ध हो गये हैं। अब वे लोग इन बातों में रुचि लेते हैं।

किसी भी इन्द्रिय का केवल दमन करके हम साधना नहीं कर सकते। दमन के साथ शमन भी करना पड़ता है। इसलिये हमारी बहिर्मुखी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करने के लिये दम और शम दोनों के आश्रय की आवश्यकता है।

(क्रमशः)

वेद – जैसा मैने पाया

डॉ. प्रणव कुमार बनर्जी, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

(गतांक से आगे)

दरिद्रता पापों की जननी होती है। तदनुसार हमें पाप से बचाओ, प्रार्थना का एक अर्थ स्वयमेव सामने आता है। दरिद्रता के अतिरिक्त भी पाप हो सकते हैं। अपराध की असंख्य श्रेणियाँ होती हैं। सभी पाप का प्रतिनिधित्व करती है। पाप से बचाओ का अर्थ होगा अपराध की प्रवृत्ति से बचाओ, गलत कार्यों में हमारी रुचि न हो।

जीवन एक युद्ध है। हम स्वभावत: जीवन के युद्ध में विजयी हों, शत्रुओं का पराभव हो इस दृष्टि से प्रार्थना है।

वेदों में बार-बार 'सोमरस' या 'सोम' शब्द का उल्लेख मिलता है। कुछ लोग इसका अर्थ 'सुरा' से जोड़ते हैं, पर यजुर्वेद में सुरा और सोम की पृथक-पृथक आहूतियों का उल्लेख है। तदनुसार दोनों भिन्न द्रव्य हैं। कहा गया कि जब यजमान पर्वत पर पर्वत पार करते हुए सोमलता की खोज में निकल पड़ता है, तब यजमान का अभिप्राय जानकर इन्द्र स्वयं पहले से ही यज्ञशाला में आकर उपस्थित हो जाते हैं। सोमलता से सोमरस पत्थरों से घिसकर यज्ञशाला में तैयार किया जाता है। वह दूध, दही, सत्तू में मिलाकर प्रस्तुत किया जाता है। इन्द्र का उदर समुद्र के समान बतलाया गया है। साधारण रूप में थोड़े से नैवेद्य से पूजा करने की पद्धति है। उदर जिसका समुद्र जैसा है उसका पेट थोड़े से सोम सत्तू के नैवेद्य से भरेगा क्या? यह तो प्रतीकात्मक है।

ऋग्वेद में आठवें खण्ड में कहा गया – जिस समय वनस्पति रूपी सोम पीसा जाता है, लोग समझते हैं कि उन्होंने सोमपान कर लिया। परन्तु ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञ) लोग जिसे प्रकृत सोम कहते हैं, उसका कोई अयाज्ञिक पान नहीं कर सकता।'

इसका अर्थ इस तरह निकलता है कि मूर्ति को देवता मानकर पूजा करना प्रचलित होने पर भी मूर्ति-पूजा वास्तव में आकारविहीन परब्रह्म की ओर जाने का एक प्राथमिक साधन रूप है। ठीक उसी तरह सोमलता एक प्राथमिक चरण है 'सोम' को उसके वास्तविक रूप में प्राप्त करने का।

ऋग्वेद के छठवें खण्ड में कहा गया – तुम तीनों लोकों को लांघकर और ऊपर चढ़कर स्वर्ग को प्रकाशित करते हो, सूर्य को प्रेरित करते हो।' इसका अर्थ यह हुआ कि सोमलता के रस में 'सोम' शब्द का वास्तविक अर्थ बहुत भिन्न है। ब्रह्मज्ञों के लिये 'सोम' शब्द का अर्थ कुछ अलग है।

सातवें खण्ड में कहा गया – सोम जिस लोक में अखण्ड तेज है, जहाँ स्वर्गलोक है, उसी अमर शून्यलोक में मुझे ले चलो।'

ऋग्वेद के प्रथम खण्ड में एक मंत्र है –

जातवेदसे सुनवाम सोम मराती यतो निदहाति वेद:।
स न: पर्यादति दुर्गाणि विश्व नावेव सिंधु दुरितात्त्यग्नि:।।

''इस सर्वभूतज्ञ अग्नि के प्रति सोम का अभिषेक करते है। हमारे प्रति जो शत्रु की तरह आचरण करते हैं, उनका धन अग्नि हरण करें। जैसे नौका से नदी पार की जाती है, उसी तरह अग्नि हमें दु:खों से, पापों से पार करा दें।

यह मन्त्र सामवेदीय सन्ध्या विधि में भी सम्मिलित है।

प्राणायामादि के बाद जब मन लौकिक स्तर से कुछ ऊपर उठ जाता है, तब सन्ध्या-वन्दन काल में यह मन्त्र पढ़ा जाता है। उस समय कोई सोमलता का नैवेद्य संध्या स्थल पर उपस्थित नहीं होता, तथापि इसका पाठ किया जाता है। इसका अर्थ यह कि जब मन के भीतर एक दिव्यता का भाव क्षरित होता है, तो वह 'सोम' का प्रतिनिधित्व करता है। इस भाव की प्रबलता प्राप्त कर सकने पर ही तीनों लोकों को लांघ सकने की परमहंसता प्राप्त होती है, अथवा समाधि मिलती है।

सामवेद में कहा गया कि सोम सबका पालन करता है। हे सोम ! तुम द्युलोक तथा पृथ्वीलोक को धारण करते हो। यह भी कहा गया कि सोम मरणधर्म रहित तथा दूसरों से हिंसित होने के अयोग्य है। अपनी प्रसिद्ध किरणों से स्थावर जंगम के प्राणियों की रक्षा करने में सोम समर्थ है। स्वभावत: सोम शब्द को सहज रूप में नहीं लिया जा सकता।

मन के भीतर काम, क्रोध, मोह, मत्सर आदि की पर्वत,

तुल्य अनेकानेक बाधायें होती हैं। इन्हें पार करने पर ही 'सोम' का साक्षात्कार सम्भव होता है। तभी यह कहा गया कि जब यजमान पर्वत पार करते हुए सोमलता की खोज करता है, तब इन्द्र उसका अभिप्राय समझ कर यज्ञस्थल पर पहले से आ जाता है। लड़का या लड़की जब परीक्षा में उत्तीर्ण होता है, माता-पिता बिना उसके कहे उसके आगे की पढ़ाई की व्यवस्था में जुट जाते हैं। साधक के प्रति इन्द्र की ममता इसी तरह होती है। तभी वह यज्ञ स्थल अथवा साधना स्थल में पहले से आ जाता है। प्रतीकात्मक रूप से संकल्प और निरन्तर प्रयास को हम दो पत्थर मान सकते हैं, जिनके घर्षण से सोमरस प्राप्त होता है।

अन्तरतम में परमानन्द की अनुभूति होने पर उस परमानन्द की दिव्यता को हम 'सोम' कह सकते हैं।

ऋग्वेद चतुर्थ खण्ड में कहा गया कि जो इन्द्र की स्तुति नहीं करता, उसे भी इन्द्र अन्न प्रदान करते हैं। भाव विभोर तुलसी तभी कहते हैं – 'ऐसो को उदार जग माहीं।' ... कौन चाहेगा कि ऐसे प्रभु से जन्म-जन्मान्तरों की पंक्ति में खड़ा होकर अपना क्रम आने पर साक्षात्कार प्राप्त न करें।

क्या आर्य बाहर से भारत भूमि में आये? क्या वेदों के ऋषि भी बाहर से आये? वेदों में पग-पग पर इसका समाधान है।

'आर्य' शब्द का प्रयोग 'सभ्य' या 'सुसंस्कृत' व्यक्ति के लिए हुआ है। राक्षस अथवा अनार्य (जो सुसंस्कृत नहीं है, असभ्य है।) जैसे शब्दों का प्रयोग केवल क्षेत्र-विशेष के लिये नहीं हुआ, बल्कि मानसिकता व्यक्त करने के लिये भी हुआ है। ऋग्वेद के तृतीय खण्ड में कहा गया है – 'हे इन्द्र, अनार्यों के निवास योग्य देशों में कीट-समूह के मध्य में गौवें तुम्हारे लिए क्या करेंगी, वे सोम के साथ मिश्रित होने योग्य दुग्धदान नहीं करती हैं। यहाँ व्यक्ति की मनोदशा के अनुसार ही कहा गया है।

यह सर्वग्राह्य तथ्य है कि जो मानसिक जड़ता से ग्रस्त है अथवा नास्तिकता के एकांगीपन से, आस्तिकता और 'सोम' की साधना को कोई जगह नहीं मिल सकती। इसलिये आर्य-अनार्य के भेद को यहाँ स्पष्ट कर दिया गया। यह भेद केवल भौगोलिक क्षेत्र का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता, वरन् मानसिक भेदों को भी व्यक्त करता है। अंग्रेजों ने राजनैतिक षड्यन्त्र किया। लार्ड मैकाले ने अनुशंसा की थी कि अंग्रेजी उपनिवेश के स्थायित्व के लिये संस्कृत भाषा एवं ब्राह्मण बौद्धिकता (वैदिक अनुशासन) को समाप्त कर देना होगा। तभी अंग्रेज वेदानुशासन के विरुद्ध थे ताकि भारत की आत्मा को विखण्डित किया जा सके और 'फूट डालो और राज करो' के आधार पर आंग्ल उपनिवेश स्थायी हो सके। अंग्रेजों का अभिमत पूरी तरह बकवास है। ऋग्वेद के द्वितीय खण्ड में इन्द्र से प्रार्थना की गई है – हे इन्द्र, रक्तवर्ण अति भयंकर पिशाचों या अनार्यों का विनाश करो और समस्त राक्षसों या अनार्यों को समाप्त करो।' इस प्रार्थना से ज्ञात होता है कि पिशाच एवं राक्षसों के लिए 'अनार्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। अनार्य भौगोलिक सीमा बांधकर नहीं रहते। वे समाज के भीतर रहा करते हैं।

वेदों में स्थान-स्थान पर भारतीय सरिताओं का वर्णन है। एक भी ऐसी नदी का वर्णन नहीं मिलता, जो विदेशी हो। अफगानिस्तान के 'काबुल' नदी का उल्लेख मिलता है। पूर्व के अखण्ड भारत में अफगानिस्तान का क्षेत्र रहा है। ऋग्वेद के दूसरे खण्ड में इन्द्र के परिचय में कहा गया, जिसके शरीर-बल से पृथ्वी भयभीत हुई थी, जिन्होंने प्रकाण्ड अन्तरिक्ष को बनाया है और जिन्होंने द्युलोक को स्वमहिमा से विस्तब्ध किया है, वे ही इन्द्र हैं। उन्होंने वृत्रासुर का विनाश करके सात नदियों को प्रवाहित किया है। सामवेद में कहा गया कि इन्द्र के पहले कोई उत्पन्न नहीं हुआ। और इन्द्र में सकल भुवन स्थिर हैं।

भारत की सात नदियाँ विख्यात हैं – गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, कावेरी, नर्मदा तथा सिन्धु। इनके अतिरिक्त अन्य नदियों का उल्लेख भी वेदों में मिलता है।

इन सन्दर्भो से भारतीय भूगोल की जो प्रतीति होती है उसमें वेदों के ऋषियों की नाड़ियों का सम्बन्ध भारत की सनातन भूमि से ही सिद्ध होता है।

सन्ध्या-वन्दन अथवा पूजारम्भ के पूर्व वैदिक पद्धति से जल का शोधन करने के लिये निम्न मन्त्र का प्रयोग होता है –

ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरू।।

(शेष भाग अगले पृष्ठ पर)

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२८१. बड़े बड़ाई ना करें

एक बार श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा, वाहन गरुड और सुदर्शन चक्र तीनों को गर्व हुआ कि भगवान के सान्निध्य में रहने के कारण वे ही उन्हें अधिक प्रिय हैं और उनके लिये कोई काम कठिन नहीं। श्रीकृष्ण ने उनका घमण्ड चूर करने का निश्चय किया। उन्होंने एक दिन गरुड से कहा, ''जाओ, कुबेर के सरोवर से एक सुंदर कमल-पुष्प ले आओ। उस समय वहाँ पास ही पवनसुत विश्राम कर रहे थे। उन्होंने जब गरुड को फूल तोड़ते देखा, तो पूछा, ''क्या तुमने कुबेर से अनुमति ली है?'' गरुड ने दंभपूर्वक उत्तर दिया, भगवान के वाहन को किसी की अनुमति की आवश्यकता नहीं।' गरुड की धृष्टता से बजरंगबली नाराज हो गये। उन्होंने गरुड को अपनी बाईं कांख में दबा दिया। गरुड ने जोर-जोर से पंखों को फड़फड़ाना शुरू किया, किन्तु स्वयं को मुक्त नहीं कर सके।

तब श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से कहा, ''गरुड को श्रीरामदूत ने अपनी कोख में दबा रखा है। उसे छुड़ाकर लाओ। वहाँ पुहँचकर सुदर्शन चक्र ने अपनी गति बढ़ाई और हनुमानजी को भगाने की चेष्टा की। किन्तु उन पर कोई असर न हुआ। हारकर वह जब शान्त हो गया, तो बजरंगबली ने उसे अपनी दाहिनी कांख में दबा लिया।

श्रीकृष्ण ने सत्यभामा को सारी बात बताकर गरुड और सुदर्शन चक्र को हनुमानजी के कब्जे से छुड़ाकर लाने को कहा। सत्यभामा बोली, ''जब वे दोनों स्वयं को मुक्त कराने में असमर्थ हैं, तो मेरे लिये उन्हें छुड़ाकर लाना असंभव है।'' इस पर श्रीकृष्ण ने कहा, ''तुम सीताजी का रूप धारण करो और हनुमान जी से दोनों को छोड़ने का आदेश दो।'' सत्यभामा ने सीता का रूप धारण करने की भरपूर चेष्टा की, किन्तु सफल न हुईं। श्रीकृष्ण ने तब राधा को स्मरण कर बुलवाया और हनुमान जी के कब्जे से गरुड और सुदर्शन चक्र को छुड़ाकर लाने को कहा।

राधा ने हनुमानजी के पास जाकर पूछा, ''अपनी कांखों में तुमने किसे दबाकर रखा है?'' हनुमानजी ने उत्तर दिया, ''एक सामान्य पक्षी व्यर्थ ही पंख फड़फड़ाकर और दूसरा यह चक्र अपनी गति बढ़ाकर यहाँ अशान्ति फैला रहे थे, इसलिये दोनों को मैंने कांख में दबाकर उन्हें शान्त कर दिया है।'' राधा ने कहा, ''भगवान श्रीकृष्ण को इन दोनों की जरूरत आ पड़ी है। इसलिये इन्हें लाने के लिये मुझे आपके पास भेजा है। आप इन्हें मुक्त करेंगे न? 'अवश्य' कहकर पवनपुत्र ने दोनों को मुक्त कर दिया। उसी समय सत्याभामा को लेकर श्रीकृष्ण वहाँ पहुँच गये। उन्होंने गरुड व सुदर्शन चक्र से पूछा, ''तुम्हें अपने बल की प्रतीति तो हो ही गई होगी।'' दोनों ने कहा, 'भगवन्, हमें क्षमा करें, हमें अपनी शक्ति का गर्व हो गया था, जो अब दूर हो गया है।'' सत्यभामा को अपने सामर्थ्य का एहसास हो गया। वे यह भी जान गईं कि राधा श्रीकृष्ण को अधिक प्रिय क्यों है। ○○○

(पृष्ठ २७१ का शेष भाग)

वैदिक ऋषियों द्वारा यह व्यवस्था कि भारत के किसी भी भाग में रहो, इस मन्त्र से जल शोधन करके एक राष्ट्रीय शरीर की संकल्पना के साथ 'सोम' की साधना में आगे बढ़ो। इस मन्त्र से ही सिद्ध होता है कि वेदों के ऋषि (महान आर्य) सम्पूर्ण रूप से भारतीय थे।

सामवेद का समापन सार्थक ढंग से होता है –

''जो सदा जाग्रत रहता है उसको ऋचाएँ चाहती हैं, जो जाग्रत रहता है, उसको ही स्तोत्र रूप साम प्राप्त होते हैं, जो जाग्रत रहता है, उससे सोम कहता है कि मुझे स्वीकार करो।''

''अग्नि ज्योति है, ज्योति अग्नि है। इन्द्र ज्योति है, ज्योति इन्द्र है, सूर्य ज्योति है, ज्योति सूर्य है।'' जीवन को ज्योतिर्मय करते हुए वेदों की वाणी समाप्त होती है। ऐसा महान वेद हम सबकी रक्षा करे – श्रुतं में गोपाय।

○○○
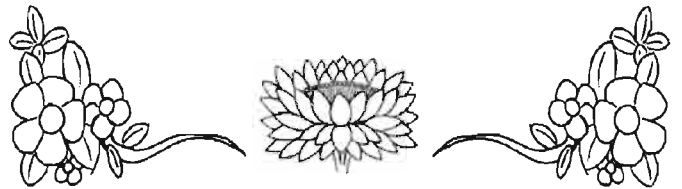
दु:ख का सकारात्मक स्वरूप

ब्रह्मचारी पावनचैतन्य, बेलूड़ मठ

अनित्यम् असुखं लोकम्

एक बार गौतम बुद्ध के पास एक स्त्री आई और विलाप करने लगी कि उसके पुत्र की साँप काटने से मृत्यु हो गई है तथा उसका इकलौता पुत्र होने के कारण वह उनके पास उसे जीवित कराने के लिए आई है। बुद्ध देव के समझाने पर भी वह शोकाकुल स्त्री यह समझने को तनिक भी तैयार नहीं थी कि मृत्यु अन्तिम सत्य है और एक दिन सबको इसे स्वीकार करना ही होगा। वह स्त्री समझती थी कि ये एक महात्मा हैं और उसके पुत्र को जीवित कर सकते हैं। स्त्री के इस आग्रह को देखकर बुद्ध देव ने उससे कहा, 'ठीक है, मैं तुम्हारे पुत्र को जीवित कराने के लिए प्रभु से प्रार्थना करता हूँ। किन्तु तुम इसके लिये कहीं से सरसों ले आओ। लेकिन ध्यान रखना, जिस घर से तुम सरसों लाओगी, उस घर में किसी की मृत्यु न हुई हो। बड़ी आशा से वह स्त्री गाँव में गई, पर उसके हाथ निराशा ही लगी। क्योंकि वह जिस घर में जाती, सभी घरों से यही उत्तर मिलता कि उस घर में किसी-न-किसी की मृत्यु अवश्य हुई है। अन्त में वास्तविकता का अनुभव कर वह बुद्ध देव के पास पहुँची। उसने गौतम बुद्ध को बताया कि अन्य लोगों के समान वह भी इस दारुण दु:ख का धैर्य और साहस पूर्वक सामना करेगी। 'अनित्यम् असुखं लोकम्' यह जगत वास्तव में दुखपूर्ण और अनित्य है।

सुख-दुख अपरिहार्य है

सुख और दु:ख जीवन के अभिन्न अंग हैं। जिस प्रकार समुद्र में ज्वार-भाटा आना स्वाभाविक प्रक्रिया है, उसी प्रकार सुख-दु:ख जीवन की स्वाभाविक प्रक्रिया है। हम सदैव सुख का ही आलिंगन करना चाहते हैं और दुख का स्पर्श भी नहीं करना चाहते। परन्तु यह असम्भव है। वस्तुत: दु:ख की अनुभूति के बिना सुख की अनुभूति असम्भव है। शुभ-अशुभ, दिन-रात, रोना-हँसना, धूप-छाँव, प्रकाश-अन्धकार यह विरोधाभास ही अस्तित्व का आधार है। जिस घर में किसी समय किसी की मृत्यु होती है, उसी घर में किसी दिन विवाहोत्सव भी होता है। सुख की कामना सभी करते हैं, किन्तु दु:ख सबके लिये गले का काँटा स्वरूप है। इस दुख के समाधान के लिए पाश्चात्य ने तो अनेकों उपकरण बनाए और विज्ञान के माध्यम से उसने बाह्य जगत के कष्टों को ही कम करने का प्रयास किया। परन्तु आर्यों ने अन्तर्जगत में गोते लगाए और मानवीय दु:खों को दूर करने के लिए ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग आदि पथों का अनुसन्धान किया। आइए, हम इनका अवलोकन करें।

ज्ञानयोगी की दृष्टि में दु:ख

ज्ञानी स्वयं को तन-मन से परे मानता है। वह तो शुद्ध, मुक्त आत्मा है। कहा गया है –**सुखं दु:खं च तद्धर्मः सदानन्दस्य नात्मनः**। (विवेकचूडामणि १०५) अर्थात् सुख और दु:ख इस अहंकार के ही धर्म हैं, नित्यानन्द स्वरूप आत्मा के नहीं। सुख-दु:ख का सम्बन्ध तो शरीर और मन से है। अत: किसी प्रकार से भी दुख उसे स्पर्श नहीं कर सकता। वह तो आत्मा है।

वेदान्त के दृष्टिकोण से दु:ख का कारण अविद्या है। जिस क्षण अविद्या नष्ट हो जायेगी, तत्क्षण हम अपने स्वाभाविक स्वरूप को पा जायेंगे और दु:ख का अस्तित्व नहीं रहेगा। सर्वत्र हम ब्रह्म-दर्शन करेंगे – 'ईशावास्यमिदं सर्वं' और विश्वरूप ईश्वर की पूजा के लिए ही हमारे कर्म होंगे।

ज्ञान के इस आध्यात्मिक दर्शन को व्यावहारिक जीवन में किस प्रकार प्रयोग करना चाहिये, इसके लिये स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, 'लोगों को भय होता है कि जब वे यह अवस्था प्राप्त कर लेंगे, जब उन्हें ज्ञान हो जाएगा कि सभी एक हैं, तब उनके प्रेम का स्रोत सूख जाएगा, जीवन में जो कुछ मूल्यवान है, वह सब चला जाएगा, इस जीवन में और पर-जीवन में जो कुछ उन्हें प्रिय था, उसमें से कुछ भी न बचा रहेगा। किन्तु लोग यह बात एक बार भी नहीं सोचते कि जिन्होंने अपने सुख का त्याग किया है, वे ही जगत में सर्वश्रेष्ठ कर्मी हुए हैं। मनुष्य तभी सच्चा प्रेम कर सकता है, जब वह देखता है कि उसके प्रेम का पात्र एक मिट्टी का ढेला नहीं, बल्कि स्वयं भगवान हैं। स्त्री पति से और अधिक प्रेम करेगी, यदि वह समझेगी कि उसके पति साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं। पति भी स्त्री से अधिक

प्रेम करेगा, यदि वह जानेगा कि स्त्री स्वयं ब्रह्मस्वरूपा है। वे माताएँ संतान से अधिक स्नेह कर सकेंगी, जो सन्तान को ब्रह्मस्वरूप देखेंगी। वे ही लोग अपने महान, शत्रुओं के प्रति भी प्रेमभाव रख सकेंगे, जो जानेंगे कि ये शत्रु साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं। वे ही लोग अत्यन्त अपवित्र व्यक्तियों से भी प्रेम कर सकेंगे, जो यह जान लेंगे कि इन महादुष्टों में भी वे ही प्रभु विराजमान हैं। जिनका क्षुद्र अहं बिल्कुल मर चुका है और उसके स्थान पर ईश्वर ने अधिकार जमा लिया है, वे ही लोग जगत के प्रेरक हो सकते हैं। उनके लिये समग्र विश्व दिव्यभाव से रूपान्तरित हो जाएगा। दु:खकर अथवा क्लेशकर जो कुछ भी है, वह सब उनकी दृष्टि से लुप्त हो जाता है, सभी प्रकार के द्वन्द्व और संघर्ष समाप्त हो जाते हैं। (विवेकानन्द साहित्य २/४०)

योगी की दृष्टि में दु:ख

योग में दु:ख को क्लेश की संज्ञा दी गई है। पतंजलि के योगसूत्रानुसार – **अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः**। (प.यो.सू., साधनपाद/३) अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँचों क्लेश हैं। ये पाँचो जीव को संसारचक्र में घुमानेवाले महादु:खदायक हैं। इसलिए इन्हें क्लेश कहते हैं। अनित्य में नित्यता की अनुभूति को अविद्या, अहं (मैं-पन) को अस्मिता, सुख की आसक्ति को राग, दु:ख के प्रति विकर्षण को द्वेष और मृत्यु भय को अभिनिवेश कहते हैं। **समाधिभावनार्थः क्लेश -तनूकरणार्थश्च**। (प.यो.सू., साधनपाद २/२) अर्थात् यह क्रियायोग समाधि की सिद्धि करनेवाला और क्लेशों को क्षीण करनेवाला है। क्लेशों में जो कार्य करने की शक्ति है, उसका जब योग के साधनों द्वारा ह्रास कर दिया जाता है, तब वे हीन शक्ति वाले क्लेश 'तनु' कहलाते हैं। यह क्लेश साधारण मनुष्यों के लिये जितना दु:खप्रद होता है, उतना योगियों को नहीं होता। क्योंकि योगियों के योग से क्लेश का प्रभाव क्षीण हो जाता है। योगसूत्रानुसार – **ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः**।' (प.यो.सू. साधनपाद - २ /११) अर्थात् उन क्लेशों की स्थूल वृतियाँ ध्यान के द्वारा नाश करने योग्य हैं।

मनुष्य जब दुख में होता है, तब उसके लिए ध्यान एक कठिन प्रक्रिया हो जाती है। क्योंकि ध्यान के समय उसे अपने-अपने दु:ख का स्मरण ही अधिक होता है और यह ध्यान में बाधक होता है। पर इसके निरन्तर प्रयास से योगी इसमें सफलता प्राप्त करता है। भीष्म पितामह अपने शान्ति पर्व के उपदेश में कहते हैं –

मनसा क्लिश्यमानस्तु समाधानं च कारयेत्।
न निर्वेदं मुनिर्गच्छेत् कुर्यादेवात्मनो हितम्।।

(महाभारत, शान्तिपर्वणि, मोक्षधर्म पर्व, अध्याय १९५/१६)

ध्यान के समय मन में कितना ही क्लेश क्यों न हो, साधक को उससे ऊबना नहीं चाहिए बल्कि और भी तत्परता के साथ मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करना चाहिये। ध्यानाभ्यासी योगी-मुनि को सर्वथा अपने कल्याण का ही प्रयत्न करना चाहिये।' 'इस प्रकार मनोनिग्रहपूर्वक ध्यान करनेवाले योगी को जो दिव्य सुख प्राप्त होता है, वह मनुष्य को किसी दूसरे पुरुषार्थ से या दैवयोग से भी नहीं मिल सकता –

न तत्पुरुष कारेण न च दैवेन केनचित्।
सुखमेष्यति तत् तस्य यदेवं संयतात्मनः।।

(महाभारत, शान्तिपर्वणि, मोक्षधर्म पर्व, अध्याय- १९५/२१)

गीता में योग को 'योगो भवति दु:खहा' – दुखों का नाश करनेवाला कहा गया है। वास्तव में योगी जब मन को अन्य सभी ओर से हटाकर एक ही ओर केन्द्रित कर लेता है, तो उसके चारों ओर की विषम परिस्थतियाँ भी उसे विचलित नहीं कर सकतीं। यहाँ तक की योगी को अपना देह बोध भी नहीं रह जाता, क्योंकि वह योग के आनन्द में गोता लगा रहा होता है। जब गिरीशिचन्द्र घोष और स्वामी विवेकानन्द जी ध्यान कर रहे थे, तब की एक घटना है। मच्छरों के काटने के कारण गिरीश बाबू ध्यान नहीं कर पा रहे हैं, परन्तु स्वामीजी हिमालय की भाँति अविचल ध्यानस्थ हैं और उनका सारा शरीर मच्छरों से ऐसा ढँका हुआ है, जैसे वे कम्बल ओढ़े हुए हों। किन्तु उन्हें देह-बोध ही नहीं है, वे ध्यानमग्न हैं।

स्वामीजी योगी के लक्षण कहते हुए योग को दु:खनाशक और आनन्ददायक बताते हैं – 'सुख का भाव ही सत्त्व का स्वाभाविक धर्म है, सात्त्विक मनुष्य के लिए सभी सुखमय प्रतीत होते हैं। अत: जब तुममें यह आनन्द का भाव आता रहे, तो समझना कि तुम योग में उन्नति कर रहे हो। सारे दु:ख-कष्ट तमोगुण से उत्पन्न होते हैं, अतएव तुम्हें उससे बचकर रहना होगा, उसको दूर कर देना होगा। विषादमय चेहरा तमोगुण का एक लक्षण है। सबल, दृढ़, स्वस्थ, युवक और साहसी मनुष्य ही योगी बनने के योग्य हैं। योगी के लिये सभी सुखमय

प्रतीत होते हैं, वे जिस किसी मनुष्य को देखते हैं, उसी से उनको आनन्द होता है। यही धार्मिक मनुष्य का चिह्न है।

कर्मयोगी की दृष्टि में दु:ख

कर्मयोगी अपने जीवन में आनेवाले दु:खों को प्रारब्ध मानकर अर्थात् अपने पूर्वकृत कर्म का ही फल मानकर स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार दु:ख उसके लिए एक शिक्षा की भाँति आता है। वह अब ऐसा कोई भी कर्म न करे, जिससे उसे इस प्रकार दुख उठाना पड़े। रामचरित मानस में सन्त तुलसीदास जी इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हैं –

करम प्रधान बिस्व करि राखा।

जो जस करइ सो तसु फलु चाखा। (अयोध्याकाण्ड, २१८)

ईश्वर ने विश्व में कर्म को ही प्रधान कर रखा है, जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है।

जो हो चुका है, उसे कोई परिवर्तित नहीं कर सकता, जो हो रहा है, उसे भी नहीं बदला जा सकता, पर जो आनेवाला है, उसे बदला जा सकता है। अत: वर्तमान कर्म को ऐसे किया जाय, जिससे हम शुभ की ओर जायँ। गीता में भी भगवान हमें आश्वस्त करते हुए कहते हैं – न हि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।' अर्थात् जो शुभ कर्म (भगवत्प्राप्ति के लिए कर्म) करते हैं, वे कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होते। (गीता ६/४०)

बिना कर्म के मनुष्य एक क्षण भी नहीं रह सकता – 'न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।' अब यदि कर्म को स्वीकार करें, तो कर्मफल को स्वीकारना भी स्वाभाविक हो जाता है। दु:खरूपी कर्मफल को हम प्रारब्ध कहते हैं। मनुष्य को अपने सभी कर्मों का फल स्वयं ही भोगना पड़ता है।'' जैसे बछड़ा हजारों गौओं में अपनी माँ को पहचानकर उसे पा लेता है, वैसे ही पहले का किया हुआ कर्म भी अपने कर्ता के पास पहुँच जाता है –

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वफलं कर्म कर्तारमनुगच्छति ।।

(महाभारत/मोक्षधर्म पर्व /अध्याय १८१/१८)

इस प्रकार दु:खों का कारण वह स्वयं को ही मानता है – 'योगो भवति दु:खहा' और इस कारण वह किसी पर दोषारोपण भी नहीं करता। लक्ष्मण जी निषादराज से यही कहते हैं –

काहु न कोई सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता ।।

अर्थात् हे भ्राता ! कोई किसी को सुख-दुख नहीं देता। मनुष्य अपने कर्मों का फल ही भोगते हैं।

भागवत में प्रारब्ध कर्म को स्पष्ट करने के लिए एक कहानी का उल्लेख मिलता है –

प्राचीन समय की बात है उज्जैन में एक ब्राह्मण रहता था। उसने खेती-व्यापार आदि करके बहुत-सी धन-सम्पत्ति इकट्ठी कर ली थी। वह बहुत ही कृपण, कामी और लोभी था। क्रोध तो उसे बात-बात में आ जाता था। उसने अपने जाति-बन्धु और अतिथियों को कभी मधुर वाणी से भी प्रसन्न नहीं किया, खिलाने-पिलाने की तो बात ही क्या है। वह धर्म-कर्मरहित होकर घर में रहता और अपनी धन-सम्पत्ति से समय पर अपने शरीर को भी सुखी नहीं करता था। उसकी कृपणता और बुरे स्वभाव के कारण उसके बेटे-बेटी, भाई-बन्धु, नौकर-चाकर और पत्नी आदि सभी दुखी रहते और मन-ही-मन उसका अनिष्ट चिन्तन किया करते थे। बहुत दिनों तक ऐसे जीवन बिताने से, पञ्च महायज्ञ के भागियों के तिरस्कार करने से, उसके पूर्व पुण्यों का सहारा, जिसके बल से अब तक धन टिका हुआ था, वह सब जाता रहा और जिसे उसने बड़े उद्योग और परिश्रम से इकट्ठा किया था, वह धन उसकी आँखों के सामने ही नष्ट-भ्रष्ट हो गया। उस नीच ब्राह्मण का कुछ धन तो कुटुम्बियों ने ही छीन लिया, कुछ चोर चुरा ले गये, कुछ आग लग जाने आदि दैवी कोप से नष्ट हो गया। इस प्रकार उसकी सारी सम्पत्ति चली गयी। उसके सगे-सम्बन्धियों ने मुँह मोड़ लिया। परन्तु इस तरह चिन्ता करते-करते ही उसके मन में संसार के प्रति महान दुख-बोध और उत्कट वैराग्य का उदय हो गया। इसके बाद वह मौनी संन्यासी हो गया। वह भिक्षा के लिये नगर और गाँवों में जाता था, पर दुष्ट उसे देखते ही टूट पड़ते और तरह-तरह से उसका तिरस्कार करके उसे तंग करते। उसे मारते-पीटते, डाँटते, बाँधते पर वह सब कुछ चुपचाप सह लेता। अब भिक्षुक के मन में इससे कोई विकार नहीं होता। वह समझता कि यह सब मेरे पूर्वजन्म के कर्मों का फल है और मुझे अवश्य भोगना पड़ेगा। इस प्रकार ब्राह्मण का समस्त धन नष्ट होने पर भी उसके क्लेश दूर हो गए। **(क्रमशः)**

ईश्वर की सहयात्री थी - काल्वे

लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला, दिल्ली

मृत्यु ! आँख के सामने व्यक्ति मर गया। काल्वे उस दिन दर्शकों के साथ बैठी ओपेरा देख रही थीं। उनकी अत्यन्त घनिष्ठ मित्र व सहगायिका, सुखान्त अभिनय में विख्यात केस्टील मेरी, फ्लूटो की पुस्तक मार्था से सर ट्रिस्तान की भूमिका में गा रही थी। केस्टल मेरी को मंच पर आते ही काल्वे ने समझ लिया कि वह अत्यन्त थकी हुई और अस्वस्थ है, ऐसी लग रही है जैसे भारी बोझ लेकर हाँफते-हाँफते मंच पर आई है। द्वितीय दृश्य में गाँव की लड़कियों ने उसे घेर रखा है। मार्था की खोज मेंसर ट्रिस्तान के भागने पर वे उन्हें रोकेंगी। काल्वे ने देखा कि केस्टल मेरी को चक्कर आ रहे हैं और सब कुछ उसको अस्त-व्यस्त सा दिख रहा है। अत्यन्त व्याकुलता से उसने हाथ फैला दिये। गाँव की महिलाओं की भूमिका करती हुई अभिनेत्रियों ने सोचा कि केस्टल मेरी अद्भुत अभिनय कर रही है और उसका अद्भुत अभिनय उसकी उपस्थित बुद्धि का परिचायक है। उसने आनन्दपूर्वक अभिनय जारी रखा। भीड़ ने उसको बहुत निकट से चारों ओर से घेर लिया। हा-हा कर हँसने लगी। खींचा-खींची करने लगी। खींचतान कर आनन्द मना रही थी। उसको ऐसे पकड़ लिया, लगा कि उसका प्राय: सांस ही बंद होने को आ गई। केस्टल मेरी ने व्याकुल होकर उनसे हाथ छुड़वाने की चेष्टा की, पर वह अन्तिम आर्तनाद कर दम तोड़ पृथ्वी पर गिर गयी। तब सब दौड़े आये, पर तब तक सब कुछ शेष हो चुका था। काल्वे ने उसके ठंडे मुँह पर से मेकप हटाने की चेष्टा की, पर असफल रही। केस्टल मेरी को कमेडियन मेकप आदि के साथ ही उठाकर ले जाना पड़ा। चारों और रुदन का हाहाकर मच गया। कमेडियन केस्टल मेरी ने अपने जीवन के मूल्य पर सर्वश्रेष्ठ दुखान्त अभिनेता का गौरव अवश्य खरीद लिया। यही है अभिनेता का जीवन। तुम्हारे अभिनय को हमने खरीद लिया है। प्रतिभा व्यापारिक वस्तु है। इसे खरीदा जा सकता है। इस समय तुम कैसे हो? क्या सोच रहे हो? इसका कोई मूल्य हमारे पास नहीं है। तुम अभी हमें क्या दे रहे हो? बस यही महत्वपूर्ण है।

ऐसी ही एक पुरानी बात है। उस दिन काल्वे को अचानक अस्वस्थता का बोध हुआ। वे अपने गौरव के चरम शिखर की अवधि में शिकागो आई हैं। न्यूयार्क में कार्मिन को कल्पनातीत सफलता मिली है। समाज के प्रतिष्ठित लोगों में काल्वे को अभिनन्दन करने की होड़ लगी है। पृथ्वी उनके पाँवों में लौट रही है, पर काल्वे सुखी होने का भाग्य लेकर पृथ्वी पर नहीं आई हैं। अत्यन्त भावनाशील, वासनामय तथा हृदयस्पर्शी अनुभवों में ही उलझी रहती हैं। रोज ही कोई न कोई गम्भीर दुखान्त घटना जीवन में होती रहती है। मन बिल्कुल अकेला रहना चाहता है। एकमात्र उसका सहारा उनकी पुत्री हैं, जो शिकागो में उनके साथ आई है। गायन समाप्त होने पर घर लौटकर उस पुत्री में ही अपने आप को भुलाकर रहना चाहती हैं ।

अस्वस्थ अनुभव करने पर भी काल्वे के लिये गाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। पागल की तरह दर्शक दौड़े आ रहे हैं। क्या काल्वे नहीं गाएँगी ? उर्वशी क्या नाचेगी नहीं? क्या दर्शक-देवताओं की अमरावती में गाएँगी नहीं? पर काल्वे अत्यन्त मानसिक बेचैनी का अनुभव कर रही हैं। ड्रेसिंग रूम में मंच पर जाने में घबड़ा रही हैं। आखिर गयीं और जब गाना शुरू किया, तो अप्रत्याशित मधुरता उनके कण्ठ में आ विराजी। दर्शकों ने बड़े हर्ष से अभिनन्दन किया। पहला अंक शेष होने पर काल्वे इतनी थक गयी कि दूसरे अंक में जाना असम्भव लगता था। फिर भी विशेष चेष्टा कर स्वयं को तैयार किया और मंच पर और भी सुन्दर गाया। द्वितीय अंक के बाद जब ड्रेसिंग रूम में आईं, तो प्राय: मूर्छित अवस्था में थीं। मैनेजर को बुलाकर कहा कि तुम घोषणा कर दो कि मैं अस्वस्थ हूँ, गा नहीं सकूँगी। काल्वे कभी इतनी हताश दिखाई नहीं दी हैं। साँस लेने में भी उन्हें कठिनाई हो रही है। सारे अंग थर-थर काँप रहे हैं। किसने उसकी सब शक्ति छीन ली है? मैनेजर और अन्य लोग उन्हें छोड़ नहीं रहे हैं। आज की रात्रि तो दर्शकगण उनका अभिनय देखने के लिये पागल हो रहे हैं। दर्शकों को समझाया नहीं जा सकता। काल्वे को जाना ही होगा। काल्वे गईं। जब जाकर मंच पर खड़ी हुईं, तो पहले की तरह फिर उनका मन तीव्र भावनाओं से अभिभूत हो गया और अद्भुत संगीत उनके गले से उमड़ने लगा। शेष अंक में काल्वे को हाथ पकड़कर मंच पर ले जाना पड़ा और काल्वे ने अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ गीत शेष अंक में

प्रस्तुत किया। अभिनय शेष हुआ, पर्दा गिरा – उन्मत्त दर्शकों के अभिनन्दन की प्रतीक्षा किए बिना, किसी अज्ञात पर निर्मम यन्त्रणा से छटपट करती हुई काल्वे ड्रेसिंग रूम में दौड़ आई। देखा कि मैनेजर और उसके साथी मुँह लटका कर खड़े हैं। काल्वे समझ गई कि कुछ अत्यन्त दुखद घटना हुई है। काल्वे ने सुना कि जिस समय वे गा रही थीं, उसी बीच उनकी एकमात्र पुत्री जो अपने मित्र के घर पर थी, जल कर मर गई है। माँ जब गा रही थी, तो पुत्री उस समय जल रही थी। जलती हुई पुत्री की यन्त्रणा माँ के कण्ठ से गीत के रूप में प्रवाहित हो रही थी। चारों ओर अन्धकार छा गया। अब तो केवल मृत्यु ही काल्वे को मुक्ति दे सकती है। एक दिन सरोवर में डूब कर काल्वे ने अपने जीवन का अन्त करना चाहा था, पर उनके गीत ने ही उसे सरोवर में डुबकी नहीं लगाने दी। अब गीत का गला सूख चुका है। अपने जीवन का शेष गीत गा चुकी है। मृत्यु ही एकमात्र उपाय है। इस ज्वलन्त स्मृति की चिन्ता पर मृत्यु ही एकमात्र स्वर्ग लग रहा है। काल्वे ने फिर सरोवर में कूदकर आत्महत्या करने की चेष्टा की, किन्तु क्या आश्चर्य? क्यों उन्हें लौट आना पड़ा? एक बार नहीं, कई बार चेष्टा की और बार-बार असफल रहीं। आखिर उनको जाना पड़ा, उसी भवन में जहाँ जाने के लिए उसके बन्ध-बान्धव उसे अनेक बार कह रहे थे, पर उसका जाने का उत्साह नहीं हो रहा था। उस भवन में रुके हुए हैं स्वामी विवेकानन्द।

इस भारतीय संन्यासी विवेकानन्द ने कुछ दिन पहले ही शिकागो धर्म-महासभा में अपने भाषण से अद्‌भुत ख्याति अर्जित की है। प्राचीन पौराणिक देवताओं की तरह उनका सुन्दर चेहरा। कांसे के घण्टे की ध्वनि की तरह उनका कंठ-स्वर। सारे शरीर के चारों ओर शक्ति और पवित्रता का प्रकाश। आयु में तरुण पर स्वयं चिरायु। विवेकानन्द ने अपनी प्रचण्ड शक्ति से बहुत से लोगों का परित्राण किया है। उनका सान्निध्य मात्र ही प्रेरणादायक और प्रकाशमय है। हो सकता है कि वे काल्वे को सान्त्वना दे सकें ! हो सकता है कि जिस दु:ख सागर में वह डूबी हुई है, उसको वे उबार सकें। काल्वे के मित्र उसे यही समझा रहे हैं। इन मित्रों में ही हैं मिसेज मिलवार्ड आडम्स। मिसेज आडम्स यशस्वी महिला हैं। नाट्यकला, दर्शन, शरीर-चर्चा इत्यादि विषयों पर भाषण की प्रतिभा से उन्होंने बहुत ही यश प्राप्त किया है। उनकी बुद्धिमत्ता, भावों की व्यापकता तथा गम्भीर स्वभाव के कारण काल्वे उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखती हैं । वे जब स्वामी विवेकानन्द को अपना गुरु मानती हैं और काल्वे से अनुरोध करती हैं, उनसे मिलने के लिए, तो काल्वे उनकी अवहेलना नहीं कर सकतीं। उन्होंने बड़ी उत्सुकता से मिसेज आडम्स की बात सुनी है।

विवेकानन्द का अर्थ है विवेक का आनन्द। सचमुच में ही वे विवेक की आनन्द मूर्ति हैं। ब्रह्मवादी परिव्राजक संन्यासी ईशु की तरह कभी यहाँ रहते हैं, तो कभी वहाँ। उसकी तरह कोई संचय नहीं करते हैं। केवल अपनी जीवनदायिनी वाणी दान करते हैं। सबके साथ ही उनके स्तर पर आकर बात करने में समर्थ हैं। बड़े-बड़े डॉक्टर, वकील, वैज्ञानिक, भाषाविद् सबकी बातें वे समझते हैं और उन्हें समझाने में समर्थ हैं।

काल्वे ने कहा ठीक है। समय निकाल कर उनसे भी मिलूँगी और अपने कौतूहल को शान्त कर लूँगी। अनेक मित्र जोर दे रहे हैं कि विवेकानन्द अभी यही हैं। अरे ! उनके पास शीघ्र जाओ, वे निश्चय ही तुम्हें शान्ति दे पाएँगे। काल्वे सोचती हैं, क्या मुझे शान्ति देगा एक भारतीय संन्यासी ! काल्वे के होठों पर यन्त्रणा और व्यंग की रेखा खींच जाती है और उसके बाद वह सोचती है कि मुझे शान्ति केवल मृत्यु ही दे सकती हैं। पर बार-बार चेष्टा करने पर वह आत्महत्या भी तो नहीं कर पा रही है। अत: उसने सोचा कि मित्रों की बात मानकर भी देख लेती हूँ और इस भावना के साथ विवेकानन्द के निवास पर उपस्थित हो गईं। निवास स्थान पर पहुँचकर बड़ी उद्दण्ड भंगिमा से उसने कहा, मैं विवेकानन्द से मिलने आयी हूँ।

स्वामीजी से मिलने आयी हैं? चलिये ले चलती हूँ, पर आपसे एक अनुरोध करती हूँ कि उनके सामने उपस्थित होकर पहले आप कुछ मत बोलिएगा। अगर वे कुछ पूछें, तभी उत्तर दीजिएगा।

काल्वे के अहंकार को धक्का लगा। क्या उन्हें जाकर वहाँ शान्त होकर प्रतीक्षा करनी पड़ेगी? पर अब उपाय भी क्या है। जब आ ही गई हूँ, तो संन्यासी से मिलकर ही जाऊँ। स्वामीजी बैठकर ध्यान कर रहे हैं। काल्वे खड़ी है और स्वामीजी ध्यान में रत हैं। काल्वे के भीतर-ही-भीतर क्रोध उमड़ रहा है। सोच रही है कि मैं अच्छे गवारूँ असभ्य व्यक्ति के सामने आई हूँ, जो मेरी जैसी विख्यात गायिका का सम्मान न कर उसे अपने सामने खड़ा कर रखा है। नहीं, यह सहन नहीं हो सकता, मैं जा रही हूँ।

काल्वे लौटने के लिए प्रस्तुत हुई। पर सोचा, जाने से पहले एक बार व्यक्ति को अच्छी तरह देख तो लूँ। वे ध्यान की भंगिमा में बैठे हैं। लाल गेरुआ रंग की पोशाक मेज पर से झूल रही है। दृष्टि भूमि की ओर है। कुछ क्षणों के बाद ऊपर आँख उठाये बिना ही उन्होंने बोलना प्रारम्भ किया। "बेटी ! तुम्हारे चारों ओर कैसी यन्त्रणा और संकट का वातावरण है। शान्त हो। तुम्हें शान्ति की अत्यन्त आवश्कता है।" 'उसके बाद जो मनुष्य मेरा नाम तक नहीं जानता है, वह शान्त और अविचलित स्वर में मेरी गोपनीय घटनाओं और यंत्रणाओं की कथा कहने लगता है। ऐसी कथाएँ उन्होंने बताई जो मेरे अन्यतम मित्र भी नहीं जानते थे। मुझे लगा, यह तो अत्यन्त अस्वाभाविक और अलौकिक है। मैं अत्यन्त प्रभावित हुई और निस्तब्ध रह गई। थोड़ी देर बाद अपने आप को सम्भालकर मैंने पूछा –"आपको यह सब कैसे मालूम हुआ? किसने यह सब आपको बताया है?" अत्यन्त मधुर हास्य से उनका मुँह उज्जवल हो उठा। उन्होंने मेरी ओर देखा, जैसे मैंने बच्चों की तरह मूर्खतापूर्ण प्रश्न उनसे पूछ लिया हो। उन्होंने बड़ी कोमल मुद्रा में कहा – "मुझे किसी ने यह सब नहीं बताया है और बताने की आवश्यकता ही क्या है? मैं तो तुम्हारे भीतर जो कुछ है, वह खुली पुस्तक के पृष्ठों की तरह पढ़ रहा हूँ।" अब विदा लेने का समय उपस्थित हुआ। मैं उठने को तैयार हुई और उन्होंने कहा कि "जो कुछ बीत चुका है, उसे भूल जाओ काल्वे। पुन: प्रसन्न हो जाओ, पुन: सुखी हो, अपने स्वास्थ्य की रक्षा करो, अपने दु:ख को लेकर एकान्त में पीड़ित मत रहो। अपनी गहन वेदना को प्रकट कर खोलो। तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन के लिए तो उसका प्रयोजन है ही, पर तुम्हारी कला के लिए भी यह आवश्यक है।" उनके व्यक्तित्व और वाणी से अत्यन्त गम्भीर भाव से प्रभावित होकर मैं लौट आई।

उन्होंने मेरे मस्तिष्क से सब पीड़ाओं और जटिलताओं को हटाकर वहाँ सुख शान्ति का भाव भर दिया। धन्य है उनकी प्रचण्ड इच्छा शक्ति। मैं पुन: प्राणवन्त और आनन्मय हो गई। उन्होंने कोई सम्मोहन (hypnotism) या mesmerism का प्रभाव मुझ पर नहीं किया। उनकी चरित्र शक्ति, उनका आदर्श, उनके लक्ष्य की गहनता और पवित्रता ने ही मेरे मन में यह सारा विश्वास उत्पन्न किया। जब उसे और निकट से जानने का अवसर प्राप्त हुआ, तब समझ में आया कि वे अपनी शक्ति से दूसरों की चिन्ताओं को शान्ति और सौम्यता में परिवर्तित कर देते हैं और इसीलिए उनकी बातें हृदय के अन्तस्तल में पहुँच जाती हैं। काल्वे ने देखा कि विवेकानन्द ध्वंस भी करते हैं और सृजन भी करते हैं। अहंकार को ध्वंस करते हैं और उसके बाद से सत्य के प्रकाश का सृजन करते हैं। स्वामीजी ने एक दिन पुनर्जन्म की बात कही थी। जन्म-मृत्यु की तरंग में दौड़ता हुआ मानव-जीवन अपने अहं की चेतना में ही अपने को भूले रहने पर कभी अनन्त से नहीं मिल पाएगा।

इस अहं के आवरण से वह जन्म-जन्मान्तर के चक्कर में ही पड़ा रहेगा। नहीं, नहीं, नहीं। स्वामीजी की बात सत्य नहीं हो सकती। काल्वे अशान्त हो उठी। अगर यह सत्य है तो मेरा सर्वनाश है। मेरी कला का सर्वनाश है। अहं का नाश ही तो मृत्यु है। अहं के बिना कला कैसे पनप सकती है? अहं के बिना व्यक्ति नहीं बन सकता। यदि अनन्त के साथ, यदि ईश्वर के साथ एकात्म हो जाऊँ तो मेरे व्यक्तित्व का क्या होगा ? स्वामीजी हँसने लगे। व्यक्तित्व की बात पर विनोद करने लगे। इस देश में तुम सभी अपने व्यक्तित्व के खोने को लेकर हमेशा भयभीत रहती हो और फिर विद्युत की तरह प्रकाश फैलाते हुए बोले – तुम्हारा और व्यक्तित्व ! अभी तो तुम लोग व्यक्ति ही नहीं हुए हो। ईश्वर को जाने बिना, अपने स्वरूप को जाने बिना कैसे कोई व्यक्ति हो सकता है ? उसके बाद कोमल और करुण कण्ठ स्वर में कहा – "एक दिन एक जल का बिन्दु विशाल समुद्र में गिरने के समय रो रहा था। ठीक तुम्हारी ही तरह। समुद्र ने पूछा – 'अरे रो क्यों रहे हो?" वर्षा का यह बिन्दु तुम्हारी ही तरह बोल रहा था। 'रोऊँ नहीं तो क्या करूँ ? मेरा तो सर्वनाश होने जा रहा है। मेरा अस्तित्व ही नष्ट होने जा रहा है।" समुद्र हँस उठा। 'अरे तुम कैसे मूर्ख हो? मेरे पास आ रहे हो। इसका अर्थ है तुम अपने भाई बहनों के परिवार के मध्य आ रहे हो। अरे तुम्हारे जैसे अगणित बिन्दुओं को लेकर ही तो मैं समुद्र बना हूँ। मुझमें आकर तुम तो स्वयं ही समुद्र हो जाओगे और यदि मुझे छोड़कर ही जाना चाहते हो तो सूर्य किरणों को पकड़कर चले जाओ बादलों में। वहाँ से फिर इस प्यासी पृथ्वी पर प्रेम और करुणा की वर्षा करो।" अनेक लोगों की तरह काल्वे ने भी यह सब संन्यासी के मुँह से सुना।

काल्वे को विवेकानन्द की शक्ति से रक्षा मिली। कैसे उनका यह सौभाग्य हुआ, यह हम नहीं जानते हैं? जीवन

के रहस्य का हमें कितना पता है? हमारे सामने जीवन का थोड़ा सा पृष्ठ खुला है। काल्वे में कला प्रेम के अलावा तीव्र धर्म प्रेम भी है। एक दिन वे संन्यासी होंगी – ऐसा मत उन्होंने बना लिया है। संन्यासी वे नहीं हुई। त्याग का जीवन उनका नहीं है। वे सर्वदा वासना में डूबी रही हैं। पर इन सब झंझावात के बीच भी अपने हृदय के मध्य उन्होंने एक दीपक की स्थिर ज्योति को संजोये रखा है और वह है धर्म की ज्योति। यह दीपक स्थिर है। पर जो बोल रहा है, वह झंझावात है। काल्वे की आत्मा इसी आदित्य वर्ण पुरुष की प्रतीक्षा कर रही है जो सागर की शान्ति की तरह ही सागर के झंझावात को भी जीवन का सत्य मानकर स्वीकार करता है, जो वासना त्याग की बात के साथ-साथ आकांक्षा की प्रबल सत्ता को अपनी प्राण शक्ति देकर स्थापित करने में समर्थ है। विवेकानन्द ने काल्वे के द्वंद के प्रति श्रद्धा निवेदन की थी। "काल्वे महान महिला है। चक्रवात के बीच खड़ी विशाल चीड़ के वृक्ष की तरह युद्ध कर रही हैं। महान दृश्य है यह।"

कार्मिन की भूमिका में लम्पट वासनाओं का प्रदर्शन करती हैं काल्वे। यह भूमिका क्या वांछनीय है? बड़े संकोच के साथ वे विवेकानन्द से यह प्रश्न करती है। उत्तर सुनती है – "कार्मिन को खराब मत समझो। वह भी सत्य है। वह झूठ नहीं बोलती। उन्मतत्ता के अपने सत्य को वह खोलकर रख देती हैं। ये सब नारियाँ प्रार्थना के शेष में मेडोना से कहती हैं – "माँ हमारी प्रार्थना पर ध्यान मत देना – हम लोग कामना की अग्नि में जलना चाहती हैं। काल्वे भी तो उसी जाति की हैं।" इस युग के धर्मनायक विवेकानन्द से हमने इसी प्रयोजनीय शक्ति को प्राप्त किया। घिसे-पिट संस्कारों का ही नाम धर्म नहीं है। धर्म मनुष्य के भीतर अन्तर्निहित शक्ति और दिव्यता की खोज व स्वीकृति है। काल्वे के पुनर्जीवन को स्वामी विवेकानन्द ने महासागर का पथ दिखा दिया है। काल्वे ने नतमस्तक हो यह प्रार्थना की है। "यह मेरा महा सौभाग्य है, मेरे लिये परम आनन्द है कि मैंने एक ऐसे महान व्यक्ति का सान्निध्य प्राप्त किया, जो सत्य ही ईश्वर का सहयात्री है। वे महत्त और महियान हैं ! वे ऋषि, दार्शनिक हैं और सच्चे मित्र हैं। मेरे आध्यात्मिक जीवन पर उनका अत्यन्त गहरा प्रभाव है। मेरे सामने उन्होंने नई दिशायें खोल दी हैं। मेरी आत्मा की अनन्त कृतज्ञता उनके प्रति।" ○○○

****

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य

अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द

देहस्य मोक्षो नो मोक्षो न दण्डस्य कमण्डलोः।
अविद्याहृदयग्रन्थिमोक्षो मोक्षो यतस्ततः ।।५५८।।

अन्वय – यतः देहस्य मोक्षः नो, दण्डस्य कमण्डलोः न, ततः अविद्या-हृदय-ग्रन्थि-मोक्षः मोक्षः।

अर्थ – क्योंकि न देह की मृत्यु का नाम मोक्ष है और न दण्ड-कमण्डलु के त्याग का, (बल्कि) हृदय की अविद्याजनित (चित्-जड़) ग्रन्थि का नाश होना ही मोक्ष है। (अतः ब्रह्मज्ञ पुरुष के देहत्याग में स्थान-काल की अपेक्षा नहीं रहती।)

कुल्यायामथ नद्यां वा शिवक्षेत्रेऽपि चत्वरे।
पर्णं पतति चेत्तेन तरोः किं नु शुभाशुभम् ।।५५९।।

अन्वय – पर्णं कुल्यायां वा नद्यां अथ शिवक्षेत्रे चत्वरे अपि चेत् पतति, तेन तरोः किं नु शुभाशुभम्?

अर्थ – वृक्ष का पत्ता चाहे नाले में पड़े या नदी में, किसी शिव-मन्दिर में गिरे या किसी चबूतरे पर, उससे वृक्ष का क्या भला या बुरा हो सकता है?

पत्रस्य पुष्पस्य फलस्य नाशवद्-
देहेन्द्रियप्राणधियां विनाशः।
नैवात्मनः स्वस्य सदात्मकस्या-
नन्दाकृतेर्वृक्षवदस्ति चैषः ।।५६०।।

अन्वय – देह-इन्द्रिय-प्राण-धियां विनाशः पत्रस्य पुष्पस्य फलस्य नाशवत् च, एषः वृक्षवत् स्वस्य सदात्मकस्य आनन्दाकृतेः आत्मनः न एव अस्ति।

अर्थ – जैसे वृक्ष से पत्ते, फूल तथा फल गिरकर विनष्ट हो जाते हैं, वैसे ही देह, इन्द्रियाँ, प्राण, बुद्धि आदि उपाधियों का नाश हो जाता है, अपने सत् तथा आनन्द स्वरूपभूत आत्मा का नाश नहीं होता। आत्मा वृक्ष के समान नित्य-निरन्तर विद्यमान रहती है।

प्रज्ञानघन इत्यात्मलक्षणं सत्यसूचकम्।
अनूद्यौपाधिकस्यैव कथयन्ति विनाशनम् ।।५६१।।

अन्वय – 'प्रज्ञानघनः' इति सत्यसूचकम् आत्मलक्षणं अनूद्य औपाधिकस्य एव विनाशनम् कथयन्ति।

अर्थ – (वेद में) 'प्रज्ञानघन' आदि श्रुतिवाक्यों के द्वारा यथार्थ सत्यसूचक आत्मा के लक्षणों का वर्णन करके उपाधिवाले जीव का ही नाश बताया गया है। (द्र. बृहदा. ४/५/१३)

****

अन्तर्राष्ट्रीय योगदिवस विशेष

योग का महत्त्व

डॉ० संध्या त्रिपाठी
प्रवक्ता, महारानी बनारस महिला महाविद्यालय, रामनगर, वाराणसी

योग भारतवर्ष की प्राचीन एवं बहुमूल्य सम्पदा है। योग ऐसी महाशक्तियों का आधार है जिनसे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक आदि सभी प्रकार की शक्तियों का विकास होता है तथा शान्ति एवं स्वास्थ्य के अन्वेषण में सफलता प्राप्त होती है। अनेक मनुष्य शान्ति एवं स्वास्थ्य की खोज में योग का आश्रय ले रहे हैं। भारत में प्राचीन काल से ही योग की साधना होती रही है और योगबल के आधार पर अनेक अद्भुत चमत्कारिक एवं अलौकिक कार्य किये गये हैं। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में भी इसकी महत्ता का वर्णन किया गया है।

योग वह साधना है, जो प्रत्येक देश, जाति एवं वर्ग के मनुष्यों के लिए उपयोगी है। योग सर्वप्रथम ऐसी जीवनशैली को व्यवस्थित, संवर्धित एवं विकसित करता है, जिससे मनुष्य की शारीरिक संरचना की पुष्टि के साथ-साथ उसकी मानसिक शक्ति भी विकसित होती है। मानव शरीर में इडा, पिंगला, सुषुम्ना आदि महत्त्वपूर्ण नाड़ियाँ एवं मूलाधार चक्र, सहस्त्रार चक्र, आज्ञा चक्र आदि अनेक संस्थान हैं, जिनका पूर्ण विकास योग से होता है।

योग का ऐतिहासिक विश्लेषण

प्राचीन समय से ही योगविद्या का महत्त्व रहा है। प्राचीन ऋषियों के प्रतिभज्ञान की अन्तर्दृष्टियों की उत्पत्ति में योग ही प्रधान कारण था। बुद्ध धर्म के पालि-त्रिपिटकों तथा जैन धर्म में, तंत्रों में एवं संस्कृत ग्रन्थों में योग की प्रक्रिया का विशिष्ट वर्णन है। इसके अतिरिक्त गोरक्षनाथ के नाथ सम्प्रदाय में, नाथपंथी के सिद्ध हठयोग में मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग के नाम से प्रसिद्ध पातंजल योगसूत्र आदि में योग का दार्शनिक और व्यावहारिक विवेचन किया गया है।

संहिताओं में ब्राह्मणों में तथा उपनिषदों में इसका कहीं तो संकेत है और कहीं इसका सुन्दर विवेचन है। प्राचीन समय से भारत में यह विचार चला आ रहा है कि हम साधना द्वारा ऐसी अनेक भौतिक और मानसिक सिद्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं, जो साधारण मनुष्यों में नहीं पाई जातीं तथा शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं के संयम से हमें दुख से छुटकारा पाने में सहायता मिलती है। अथर्ववेद में, ''कठोर साधना द्वारा अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं' – का बहुत उल्लेख है। उसके पश्चात् शीघ्र ही तपस्या का भाव उत्पन्न हुआ, जिससे निग्रह को एक नैतिक स्वरूप दिया जाने लगा। उपनिषदों के अनुसार ''योगाभ्यास यथार्थसत्ता के सत्यज्ञान की चेतनापूर्ण आन्तरिक खोज है।'' उसमें ध्यान तथा एकाग्रता पर बल दिया गया है। उपनिषदों ने तप और ब्रह्मचर्य को महान शक्ति के प्रकटीकरण का गुण बताया है। कठोपनिषद में योग की उच्चतम अवस्था का वर्णन मिलता है। मैत्री उपनिषद में छः प्रकार के योग का उल्लेख आता है और उसमें पतंजलि प्रणीत योगदर्शन के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग पाया जाता है।

महाभारत में सांख्य और योग का उपयोग एक ही पूर्ण इकाई के दो पूरक अंशों के रूप में किया गया है, और ये क्रमशः सिद्धान्त एवं व्यवहार अथवा दर्शन तथा धर्म के प्रतीक हैं। वेद, उपनिषद, महाभारत के भगवद्गीता, जैनमत, बौद्धमत, स्मृति, पुराण आदि सभी ग्रन्थों में योग की चर्चा मिलती है। यही कारण है कि अल्प साहित्य होते हुए भी यह भारतीय दर्शन का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है तथा इसका प्रचार और प्रसार अधिक है। अन्य दर्शनों की अपेक्षा इसकी एक अपनी विशेषता यह है कि यह सैद्धान्तिक ही नहीं, व्यावहारिक भी है। स्वस्थ शरीर तथा अनन्त शक्तिमान शुद्ध आत्मा दोनों ही इसके प्रतिपाद्य विषय हैं। अन्य दर्शनों के समान यह दर्शन शरीर की उपेक्षा नहीं करता, बल्कि योग के चरम लक्ष्य की प्राप्ति में इसे सहायक मानता है। शरीर के स्वस्थ रहने से ही चित्त निर्मल, विक्षेपरहित होगा तथा चित्त की निर्मलता से ही आत्मलाभ सम्भव है।

योग-दर्शन का सैद्धान्तिक विश्लेषण

योग का तात्पर्य – योग शब्द सामान्यतः सम्बन्धवाचक है, परन्तु योगशास्त्र में योग का अर्थ है समाधि। योग की परिभाषा बतलाते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं – ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'' अर्थात् योग चित्तवृत्ति

का निरोध है। योग का उद्देश्य है आत्मा के यथार्थ स्वरूप की प्राप्ति। असम्प्रज्ञात समाधि पूर्ण चित्तवृत्तियों के निरोध की अवस्था है। इसे सर्ववृत्ति-निरोध भी कहते हैं। सम्प्रज्ञात में सभी वृत्तियाँ सात्त्विक रूप को प्राप्त हो जाती हैं, परन्तु असम्प्रज्ञात में सभी का निरोध हो जाता है। यह अन्तिम अवस्था है। इस अवस्था में योगी समस्त सांसारिक विषयों से मुक्त होकर कैवल्य में लीन हो जाता है। चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहते हैं, किन्तु यह निरोध सहज कार्य नहीं, यह अभ्यास और वैराग्य से ही साध्य है।

योग के अंग – योग के आठ अंग हैं, जिन्हें अष्टांग योग कहते हैं। ये आठ अंग हैं – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन अंगों के अनुष्ठान से अविद्या का नाश हो जाता है तथा यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है।

१. यम – यम का अर्थ है उपरम या अभाव। हिंसा, मिथ्या, स्तेन, मैथुन तथा परिग्रह का अभाव या उपरम। यम के पाँच अंग हैं – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

२. नियम – शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान ही नियम हैं। बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि को शौच कहते हैं।

३. आसन – पुरुष की स्थिरता तथा सुखपूर्वक उपवेशन आसन कहा गया है।

४. प्राणायाम – श्वास, प्रश्वास आदि की गति के नियन्त्रण को प्राणायाम कहते हैं। यह तीन प्रकार का है – पूरक, कुम्भक और रेचक।

५. प्रत्याहार – इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर मन को वश में रखना ही प्रत्याहार है।

६. धारणा – बाह्य तथा आन्तरिक किसी भी विषय में चित्त को बाँध देना या लगा देना ही धारणा है।

७. ध्यान – ध्येय वस्तु में चित्तवृत्ति की एकाग्रता ध्यान है।

८. समाधि – ध्यान जब ध्येय रूप हो जाता है, तो समाधि लगती है। इस अवस्था में ध्येय और ध्यान की क्रिया दोनों पृथक नहीं रहते, वरन् ध्यान की क्रिया ध्येय रूप में ही लीन हो जाती है।

योग की सिद्धियाँ – योगाभ्यास में निम्नलिखित आठ प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं –

१. अणिमा – अणु के समान छोटा होना।

२. लघिमा – अत्यन्त छोटा रूप धारण कर उड़ना।

३. महिमा – पर्वत के समान बड़ा होना।

४. प्राप्ति – मनोवांछित किसी भी वस्तु को प्राप्त करना।

५. प्राकाम्य – इच्छानुसार शक्ति में बाधा का अभाव।

६. वशित्व – जीवों को वश में करना।

७. ईशित्व – किसी भी पदार्थ पर अपना स्वामित्व स्थापित करना।

८. यत्रकामावसायित्व – संकल्प के अनुसार सिद्धि।

योग का व्यावहारिक महत्त्व – योग एक व्यावहारिक दर्शन है। इसकी प्रक्रिया योग्य गुरु के निर्देशन में की जाती है, तो उसका सद्यः फल प्राप्त होता है। आधुनिक युग में मनुष्य भौतिकवाद एवं उपभोक्तावाद के मकड़जाल में इतना उलझ गया है कि न तो वह शारीरिक रूप से स्वस्थ है और न ही मानसिक रूप से। तनाव एक ऐसा प्रचलित रोगजनक शब्द है, जिससे मनुष्य की आयु एवं जिजीविषा समाप्त हो जाती है। हताशा एवं निराशा के वातावरण में प्राप्त सुख एवं सुविधाएँ भी उसे राहत नहीं दे पातीं। पाश्चात्य देश, जो भौतिक दृष्टि से विकसित हैं, वहाँ के नागरिक भारत की अपेक्षा अधिक अशान्त एवं मानसिक दृष्टि से दुर्बल हैं। वे इसी शान्ति की प्राप्ति के लिए भारत के साधु, सन्तों एवं आचार्यों के पास आते हैं, ताकि उन्हें जीवन में कुछ शान्ति प्राप्त हो सके। वर्तमान समय में अनेक ऐसे संस्थान चल रहे हैं, जो योग का प्रशिक्षण दे रहे हैं। अनेक आचार्य योग-साधना शिविर का भी आयोजन करते रहते हैं। इनका एक ही उद्देश्य है, भाग-दौड़ की आपाधापी भरे जीवन में मनुष्य को एक ऐसी जीवन शैली से परिचित कराना, जिससे वह अपनी पूरी आयु स्वस्थ एवं शान्तिपूर्वक व्यतीत कर सके।

आज के इस भौतिकवादी युग में मनुष्य अनेक प्रकार के मानसिक रोगों से ग्रस्त है जैसे – चिन्ता, तनाव, परेशानी, स्मृति लोप, क्रोध, चिड़चिड़ापन, उदासी, व्यग्रता आदि। इन्हीं मानसिक रोगों के कारण वह विभिन्न

प्रकार के शारीरिक रोगों से ग्रस्त है। जैसे उच्चरक्तचाप, निम्नरक्तचाप, दमा, भूख न लगना, अपच, सिरदर्द, उदर पीड़ा, वृक्क रोग, हृदय रोग, अम्लता, चर्मरोग, रक्ताल्पता, गठिया, कमरदर्द आदि। ऐसे अन्य भी अनेकों रोग हैं, जिनका इलाज योग से सम्भव है। इसके लिए अनेकों आसन कराए जाते हैं। इनमें कुछ प्रमुख आसन हैं – मत्स्यासन, भुजंगासन, शलभासन, शवासन, पवनमुक्तासन, वक्रासन, सर्वांगासन, धनुरासन, शीर्षासन, उष्ट्रासन, गोमुखासन, सूर्यनमस्कार, सुख प्राणायाम, योगमुद्रा, कपालभाति, अनुलोम-विलोम, अर्धहलासन, पर्वतासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, मूलबन्ध, अश्विनीमुद्रा, पश्चिमोत्तानासन, पादहस्तासन, ताड़ासन, भ्रामरी और ध्यान आदि के द्वारा अनेकों रोगों को दूर किया जा सकता है।

योग हमारे जीवन को नैतिक, नियमित व अनुशासित बनाता है। यह हमें मानसिक चिन्ता से मुक्ति दिलाता है और हमारे व्यवहार में भी परिवर्तन लाता है। प्रत्येक उम्र के लोगों के लिए योग आवश्यक है। योग हमारे चित्त के साथ शरीर को भी निरोग बनाता है। योग हमारी ग्रन्थियों, इन्द्रियों मांसपेशियों में कसाव लाता है और उनमें होने वाले खिंचाव से शीघ्र मुक्त करता है। योग हमारी पाचनशक्ति को बढ़ाता है। योग हमारे अन्दर शान्ति, एकाग्रता, भावात्मकता और स्थिरता लाता है और हमें आत्मविश्वासी बनाता है। बहुत सी दवाएँ हैं, जो रोगी के रोग को कुछ समय के लिए ठीक तो करती हैं, उन्हें जड़ से नहीं ठीक करतीं। इसके लिए हमें योग का सहारा लेना पड़ता है, जो हमारे शरीर को पूर्ण स्वस्थ बनाता है। इस प्रकार योग हमारे शरीर के साथ-साथ चित्त को भी स्वस्थ बनाता है। अत: वर्तमान समय में वैश्विक परिदृश्य में इसके महत्त्व को देखते हुए २१ जून, २०१५ को "अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस" के रूप में मनाये जाने का निर्णय लिया गया। आवश्यकता इस बात की है सम्पूर्ण मानव इसे अपने व्यावहारिक जीवन में आत्मसात करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. भारतीय दर्शन, प्रथम खण्ड, पृ० ९८-९९; **२.** बृहदारण्यक उपनिषद ४-१४, ३-५, ४-४, तैत्तिरीय उपनिषद, १, कठोपनिषद **३.** १२ प्रश्नोपनिषद ५-५; ३. छान्दोग्य उपनिषद् ६-८; **४.** योगश्चित्तवृत्तिनरोध:। यो०सू० २

स्वस्थ रहने हेतु दिनचर्या एवं विभिन्न ऋतुओं में आहार-विहार

डॉ. रूपेन्द्र चन्द्रकार

एम.डी. (आयुर्वेद), व्याख्याता, शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान के बदलते मूल्यों के साथ अब इस तथ्य को पर्याप्त मान्यता प्राप्त हो चुकी है कि जन-स्वास्थ्य का उन्नयन तथा रोगों की रोकथाम, चिकित्सा से अधिक महत्वपूर्ण कार्य है। यदि सामुदायिक राष्ट्रीय स्तर पर जनस्वास्थ्य उन्नत नहीं होगा और नाना प्रकार के रोग अपनी गति से उत्पन्न होते रहेंगे, तो किसी भी राष्ट्र के लिए असीम धन-व्यय से भी यह सम्भव नहीं हो पायेगा कि प्रत्येक रोगी को पूर्ण चिकित्सीय सुविधा प्रदान की जा सके। रोगों के रोकथाम में धन लगाना उनकी निदान चिकित्सा में धन लगाने से अधिक उपयोगी है। इसी तथ्य के आधार पर विश्व-स्वास्थ्य-संगठन ने १९७८ के अल्माआटा घोषणा में कहा विश्व के प्रत्येक नागरिक तक स्वास्थ्य सेवा पहुँचाने का कार्य प्रमुख रूप से देशी चिकित्सा पद्धतियों तथा देशी चिकित्सकों की सहायता से सम्भव है। इस सन्दर्भ में आयुर्वेदिय स्वस्थवृत के अतिरिक्त योगाभ्यास तथा प्राकृतिक उपचार का विशेष महत्व है। स्वस्थ रहने हेतु मानव को प्रकृति से नजदीकी बढ़ाकर निम्न शास्त्रोक्त प्रयासों का पालन करना चाहिए –

१. दिनचर्या २. रात्रिचर्या ३. ऋतुचर्या

दिनचर्या :

१. रात्रि में ग्रहण किये आहार के जीर्णाजीर्ण का विचार करते हुए ब्राह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। २. वेग को प्राप्त मलमूत्र का त्याग करना चाहिए। ३. करंज, नीम, करवीर, बबूल, अर्क, अर्जुन जैसे कटु तिक्त रसप्रधान वृक्षों की ताजी दातुन करनी चाहिए। ४. प्रतिमर्श नस्य एवं अंजन करना चाहिए। ५. व्यायाम एवं सूर्यनमस्कार आदि योगासनों का प्रयोग करना चाहिए। ६. नित्य तेलाभ्यंग विशेष रूप से सिर, कर्ण तथा पैरों में करना चाहिए। ७. गजवत स्नान करना चाहिए जिससे शरीर एवं

मन प्रफुल्लित हो। ८. भोजन अष्ट आहारविधि विशेषायतन – १. प्रकृति २. करण ३. संयोग ४. राशि (मात्रा) ५. देश ६. काल ७. उपयोग संस्था ८. उपयोक्ता के अनुसार तथा द्वादश प्रविचारणायों का ध्यान रखते हुए करना चाहिए। ये द्वादश प्रविचारणायें निम्नलिखित हैं –

उष्णं स्निग्धं मात्रावत्, जीर्णे, वीर्याऽविरूद्धम्। इष्टदेशे इष्टसर्वोपकरणं, नातिद्रुतं नातिविलम्बितम्।। अजल्पन् अहसन् तन्मना भुञ्जीत। आत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक् अश्नीयात्।।

९. रात्रि-भोजन प्रथम प्रहर में अल्प मात्रा में तथा सुपाच्य लेना चाहिये। १०. रात्रि में स्वस्थ मन से शान्ति पूर्वक शयन करना चाहिये। ११. ग्रीष्म के अतिरिक्त सभी ऋतुओं में दिवास्वप्न निषिद्ध है। १२. मल, मूत्र, वीर्य, अपानवायु, वमन, जृम्भा, क्षुधा, तृषा आदि आधारणीय वेगो को धारण न करें। १३. लोभ, शोक, भय, क्रोध, अंहकार, ईर्ष्या आदि स्वस्थता के संकेतक हैं। १४. आचार रसायन का पालन करना चाहिए। आचार रसायन निम्नलिखित हैं – सत्यवादी, अक्रोधी, अहिंसा, प्रेमी, शान्त रहने वाले, प्रिय बोलने, धीर, नित्य दान करने वाले, तपस्वी, गो, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु, वृद्ध की पूजा में सदैव तत्पर रहने वाले, अक्रूर, दयालु, समय से सोने व जगने वाले, असंकीर्ण विचारों वाले जिसकी इन्द्रियाँ आध्यात्मिक विषयों की ओर लगी हुई हो, धर्मशास्त्रों के अध्ययन में तत्पर रहने वाले पुरुष, नित्य दूध, घृत का सेवन करने वाले, देश, काल एवं प्रमाण का ज्ञान रखने वाले, युक्तिज्ञ अहंकार रहित, प्रशस्त आचार वाले व्यक्ति रसायन सेवन के बिना ही रसायन के गुणों को प्राप्त करते हैं ! अर्थात् दीर्घायु व सुखायु की प्राप्ति होती है।

ऋतुचर्या

१. हेमन्त ऋतु – शिशिर ऋतु

आहार - इस ऋतु में मधुर अम्ल, लवण रस प्रधान तथा स्निग्ध गुरु भोज्य पदार्थों को लेना चाहिए। औदक आनूप, गुड़ एवं पीठी का बना पदार्थ, उड़द, गन्नारस तथा दुग्ध से बने पदार्थ एवं नया चावल लेना हितकर होता है।

विहार - व्यायाम, उद्वर्तन अभ्यंग, धूमपान, अंजन, आतपसेवन, उष्णजल प्रयोग, गर्म शय्या का प्रयोग करना चाहिए।

अपथ्य - वातल तथा लघु आहार, अल्पाहार सत्तू आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

२. वसंत ऋतु :

आहार – इस ऋतु में कटु, तिक्त कषाय रस के और लघु आहार का सेवन करना चाहिए। यव, गोधूम, मधु मिश्रित जल का सेवन करना चाहिए।

विहार – तीक्ष्ण वमन, व्यायाम व सुहृद जनों की संगति करना चाहिए।

अपथ्य – गुरू शीतल पदार्थ, दिवा-शयन, स्निग्ध पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

३. ग्रीष्म ऋतु :

आहार – इसमें मधुर, शीत, द्रव, लघु, स्निग्ध पदार्थों का सेवन, शर्करा मिश्रित शीतल पानक, मंथ, शालि चावल, दूध, घृत, द्राक्षा नारियल पानी का सेवन हितकर है।

विहार – शीतल जल एवं वायु, सुगंधित हल्के वस्त्र का सेवन, शीत धारागृह तथा रात्रि में खुले आकाश के नीचे शयन एवं दिवा-शयन करना चाहिए।

अपथ्य – व्यायाम, आतप, कटु, अम्ल, लवण रस मद्य एवं उष्ण पदार्थ सेवन अहितकर है।

४. वर्षा ऋतु :

आहार – अम्ल, लवण और स्निग्ध आहार, पुराना चावल, गेहूँ, यव, वातनाशक तथा मधु मिश्रित आहार का सेवन करना चाहिए।

विहार – वमन विरेचन से शरीर का संशोधन कर वस्ति लेना चाहिए।

अपथ्य – नदियों का जल, सत्तू, दिन में शयन और अति व्यायाम नहीं करना चाहिए।

५. शरद ऋतु :

आहार – तिक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत शालि चावल, गेहूँ, मूँग, परवल, शर्करा, आंवला, द्राक्षा, एवं हंसोदक सेवन करना चाहिए।

विहार – विरेचन, रक्त मोक्षण, चन्द्र किरणों का सेवन और झीलों में तैरना चाहिए।

अपथ्य – भरपेट भोजन, दही, आतप सेवन, दिवाशयन करना अहितकर है।

आयुर्वेद में वर्णित इस स्वस्थवृत का पालन करने से निश्चित ही मनुष्य दीर्घायु का सुख भोग सकता है। ○○○

❄❄❄❄❄❄❄❄❄❄❄❄❄❄❄❄❄❄❄

मीराबाई का बचपन

मीरा का जन्म राजस्थान के मेड़ता राज्य में हुआ था। वह अपनी माता-पिता की एकमात्र सन्तान थी। उसके माता-पिता धार्मिक थे। वे जब भी मन्दिर जाते, तो मीरा भी उनके साथ जाती। बचपन से ही मीरा की भगवान के प्रति सहज भक्ति थी। वह मन्दिर में जब भी भगवान की मूर्ति को देखती, तो उसकी इच्छा होती कि उसके पास भी एक ऐसी छोटी सी मूर्ति हो, जिसका वह प्रतिदिन शृंगार करे, भोग लगाए इत्यादि।

एकबार मीरा के गाँव में एक महात्मा आए। वे बहुत दिनों तक उनके यहाँ रहे। उनके पास श्रीकृष्ण की सुन्दर मूर्ति थी। मीरा को वह मूर्ति बहुत ही अच्छी लगी। उसने अपने पिता से कहा, 'पिताजी! साधुबाबा के पास जो श्यामसुन्दर की मूर्ति है, वह मुझे दिला दीजिए।'

बच्चों का आंगन

पिता ने बहुत समझाया, 'बेटी, साधु-महात्मा अपने भगवान को किसी को देते नहीं हैं। अपने यहाँ क्या भगवान नहीं हैं? तू कहेगी तो दूसरी मूर्ति मँगा देंगे।'

मीरा को तो वही मूर्ति चाहिए थी। उसका मन मानो उसी में रम गया हो। उसने कहा, 'नहीं पिताजी, मैं तो उसी मूर्ति को ही लूँगी।' मीरा हठ करने लगी। पिता ने साधु से प्रार्थना की कि वे वह मूर्ति उन्हें दे दें। साधु को धन भी देना चाहा, पर वे साधु तो धन के लोभी नहीं थे। वे देने को बिल्कुल तैयार नहीं हुए। अपने भगवान को खोने के डर से वे वहाँ से अगले दिन चले गए।

छोटी मीरा को जब पता चला कि साधुबाबा वहाँ से चले गए हैं, उसके ऊपर तो मानो आकाश गिर पड़ा। उसने खाना-पीना सब छोड़ दिया। उस मूर्ति का ही ध्यान कर रोती रही। पिता ने बहुत समझाया-बहलाया, उसे और भी वस्तुएँ देनी चाही, किन्तु मीरा की तो एक ही रट कि मुझे वही श्यामसुन्दर की मूर्ति चाहिए।

छोटे बच्चे बड़े ही सरल होते हैं और भगवान सरल, निष्कपट लोगों की प्रार्थना तुरन्त सुनते हैं। साधुबाबा को भगवान ने स्वप्न में कहा, 'प्रिय! मैं तुम्हारे साथ मीरा के ही लिए तो आया था। तुम्हारी साधना अब समाप्त हुई। तुम मुझे मीरा के पास पहुँचा दो, यही मेरी आज्ञा है।'

साधु तुरन्त मीराबाई के पिता के पास गए। आँखों में आँसू भरकर उन्होंने मीरा से कहा, 'बेटी मीरा ! भगवान तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हैं। वे तुम्हारी सेवा स्वीकार करने को लालायित हैं। तुम इन गिरधर गोपाल को स्वीकार करो और प्राणों से भी अधिक इन्हें प्यार करना। ये ही तुम्हारे सब कुछ हैं। इनकी सेवा में कभी चूक मत करना।'

मीरा भी उन गिरधर लाल को पाकर सब कुछ भूल गई। भगवान की सेवा करना, उनके लिए भोग लगाना, माला बनाना, पूजा करना, यही उसके जीवन का दैनिक कार्य हो गया।

उस समय छोटी उम्र में ही विवाह हो जाता था। मीराबाई का भी विवाह हुआ। वे अपने ससुराल गईं। पर मीराबाई का मन तो इस संसार में नहीं था। वे वहाँ भी अपने श्यामसुन्दर के भजन गातीं। उनका पूरा दिन भगवान श्रीकृष्ण की सेवा, पूजा, भजन इत्यादि में बीत जाता था। मीराबाई की भगवान के ऊपर भक्ति देख उनके पति भी उनके प्रति श्रद्धा रखने लगे। कुछ समय बाद मीराबाई के पति की मृत्यु हो गई।

धीरे-धीरे उनका यश सर्वत्र फैलने लगा। अनेक सन्त-महात्मा मीराबाई से मिलने आते। यह बात वहाँ के राणा को सहन नहीं हुई। उसने तरह-तरह से मीराबाई को तंग करना शुरु किया। एकबार राणा ने मीराबाई को मारने के लिए एक पिटारी में विषधर साँप भेजा। जो लोग भगवान के प्रति भक्ति रखते हैं, भगवान उनकी प्रतिक्षण रक्षा करते हैं। जैसे ही मीराबाई ने वह पिटारी खोली, वह साँप तो उसमें था ही नहीं, वह साँप शालिग्राम की मनोहर मूर्ति में बदल गया। राणा ने जब यह बात सुनी तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। ○○○

युवकों की जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी सत्यरूपानन्द,
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

२४. प्रश्न – मैं पढ़ना चाहता हूँ, लेकिन पढ़ने के बाद भूल जाता हूँ, क्या करूँ। – राजू साहू, ललित देवांगन, हरिशंकर साहू, बिलासपुर, चन्द्रसहायक साहू, चाँपा।

उत्तर – स्मृति शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होती है। विद्वानों का मत है कि यह शक्ति जन्मजात हर व्यक्ति में भिन्न-भिन्न मात्रा में होती है। कोई व्यक्ति अपनी रुचि के विषय को ध्यानपूर्वक २ या ३ बार पढ़ करके स्मरण कर लेता है। एक दूसरा व्यक्ति उसी विषय को ५ से १० बार ध्यानपूर्वक पढ़कर तब कहीं उसे स्मरण कर पाता है। स्मरणशक्ति का घनिष्ट सम्बन्ध एकाग्रतापूर्वक पढ़ने तथा लिखने पर निर्भर करता है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात है। स्मरणशक्ति का सम्बन्ध अपनी रुचि के विषय से सम्बन्धित है। जिस विषय में हमारी रुचि है, उस विषय को हम तुलनात्मक दृष्टि से २-४ बार ही पढ़ तथा लिखकर लम्बे समय तक स्मरण रख सकते हैं। इससे भी एक महत्वपूर्ण बात यह है कि जिस विषय पर हम अधिकार करना चाहते हैं, उसके विषय में हमें पढ़कर सोचना चाहिए तथा उसे विभिन्न बिन्दुओं में विभाजित कर लेना चाहिए एवं अपनी भाषा में लिखकर यह देखना चाहिए कि विषय के मूल तत्त्वों को क्रमानुसार हमने समझ लिया है या नहीं। इस प्रकार का अध्ययन उस विषय पर हमें अधिकृत ज्ञान दे देगा तथा हम उसे लम्बे समय तक स्मरण में रख सकेंगे।

२५. प्रश्न – बड़े-बड़े महात्मा, साधु-सन्त ध्यान करते हैं। ध्यान करने का मुख्य लक्ष्य क्या है? अगर हम ध्यान करें, तो हमें क्या लाभ होगा? – निर्भय जयसवाल, अम्बिकापुर

उत्तर – ध्यान का अर्थ है – एकाग्रतापूर्वक किसी विषय वस्तु स्थान आदि को समझकर उसे स्मरण कर लेना। ध्यान रटना नहीं है। ध्येय वस्तु को ठीक-ठीक समझकर उसके भाव तथा तात्पर्य को अपनी स्मृति में स्थायी रूप से ग्रहण कर लेना होता है। अत: ध्यान की वस्तु को ठीक-ठीक समझकर उसके भाव को स्थायी रूपसे समझ लेना ध्यान है।

ध्यान की वस्तु का स्मरण करने पर हमारे मन में उसका भाव स्पष्ट रूप से प्रगट हो जाना चाहिए। यही ध्यान का प्राण है। अत: ध्येय वस्तु का बार-बार पहले देखकर, उसके पश्चात् उसका अर्थ समझकर उसे कई बार आवृत्त कर लेना चाहिए तभी ध्येय वस्तु को दीर्घकाल तक स्मरण रखने में हम सफल हो सकेंगे। इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करने पर हम ध्यान में निपुण हो सकते हैं।

२६. प्रश्न – अपने लक्ष्य के प्रति निरन्तर अडिग कैसे रहें? – संजीव जंघेल, रायपुर, अता उल्ला हाशमी, अम्बिकापुर।

उत्तर – तुम्हारे प्रश्न का प्रथम तथा सही उत्तर यह है, कि तुम अपने प्रश्न के विषय में स्वयं पहले स्पष्ट हो जाओ तथा यह जानना चाहो कि तुम चाहते क्या हो?

जब तक तुम अपने लक्ष्य के विषय में स्पष्ट नहीं हो जाओगे, यथा – 'तुम क्या चाहते हो? क्यों चाहते हो? यह स्पष्ट रूप से नहीं जान पाओगे, तब तक वह विषय एक रटन्त विद्या होकर रह जाएगा तथा आवश्यकता के समय तुम्हारे काम नहीं आएगा।

लक्ष्य को ठीक-ठीक समझे बिना तथा उसके महत्त्व को जाने बिना हम लक्ष्य को रटकर अधिक समय तक स्मृति में नहीं रख पाएगें, इसलिए लक्ष्य के विषय में सविस्तार जान लो, फिर अपनी भाषा में उसे लिख लो और तब वह लक्ष्य तुम्हारी स्मृति में लम्बे समय तक बना रहेगा।

जोड़ो भारत

बसन्त बापट

जोड़ो भारत जोड़ो भारत नवयुग ने ललकारा है।
भारत हमको प्यारा है, हम सबका यह नारा है।।
आओ मिलकर गाएँगे, हम सबको अपनाएँगे,
नहीं सहेंगे हम बँटवारा, सारा देश हमारा है।।
सब दीवारे तोड़ेंगे, दिल को दिल से जोड़ेंगे।
लाख झाँकियाँ चमक उठी हैं, फिर भी एक सितारा है।
लहू पसीना सीचेंगे, अश्कों से बल खीचेंगे।
बाहों में है उछला सागर, उसको कहाँ किनारा है।।
तरुणाई का नव अभियान, प्रेम शक्ति का यह तूफान।
कहे जमाना भारत जोड़ो, यह आखिरी इशारा है।।

अनन्त रूपिणी अनन्त गुणवती माँ सारदा

स्वामी मेधानन्दपुरी, कैलास मठ, ऋषिकेश

श्रीरामकृष्ण परमहंस कहते थे – माँ सारदा ज्ञानदायिनी मेरी शक्ति है। साक्षात् लक्ष्मी का अवतार है। माँ सारदा मात्र ज्ञानदायिनी देवीस्वरूपिणी ही नहीं है, अपितु उनमें आदर्श मातृत्व भाव है। एक आदर्श भारतीय नारी पत्नी रूप में कैसे व्यवहार करती है, अर्थात् एक आदर्श पत्नी के रूप में हम माँ को देख सकते हैं। सर्वोपरि माँ सारदा एक गुरु भी हैं। इस लेख में हम इन चार भावों को उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्तियों के द्वारा सिद्ध करने का प्रयास करेंगे।

प्रथम भाव में हम ज्ञानदायिनी देवीस्वरूपिणी माँ को लक्ष्मी के रूप में देखेंगे। निष्ठासम्पन्न सदाचारी रामचन्द्र मुखर्जी एवं सरलतास्वरूपा पवित्रहृदया माँ श्यामासुन्दरी की गोद में ही इस प्रकार के देवीस्वरूपिणी का जन्म हो सकता है। इन चारों भावों को सिद्ध करने में माँ के जीवन की घटनाएँ आगे-पीछे हो सकती हैं। किन्तु माँ सारदा के जीवन से परिचित सुपाठकों को उन भावों को ग्रहण करने में असुविधा नहीं होगी।

सर्वप्रथम उपक्रम में, रामेश्वर में शिवजी की पूजा करते समय माँ अपने शब्दों में कहने लगीं, शिवजी को मैं जैसा रखकर गयी थी, ठीक वैसे ही हैं। इस वाक्य से लक्ष्मी जो सीता बनी, वही अब सारदा बनी। श्रीरामकृष्ण देव के पिता क्षुदिराम चटोपाध्याय जी को गया में देखा गया स्वप्न भी यह निश्चित करता है कि भगवान विष्णु उनके यहाँ पुत्र बनकर आयेंगे और विष्णु के साथ सदा लक्ष्मी रहती हैं।

जयरामबाटी में माँ सारदा अकेले जब स्नान करने जाती थीं, तो उनके साथ सात सखियाँ भी जाती थीं और जब अन्य लोग आते, तो वे अदृश्य हो जातीं। घर के काम-काज में एक दिव्य बालिका उनकी सहायता करती थी और अन्य कार्यों में भी ऐसा ही दिखाई देता था। उपरोक्त घटनाओं से माँ के दैवी स्वरूप की झलक मिलती है।

अब कुछ विशेष घटनाएँ देखते हैं। शिहड़ गाँव के एक धार्मिक आयोजन में छः वर्ष की माँ सारदा भावी पतिदेव का संकेत करती है। दक्षिणेश्वर आते समय दक्षिणा काली बहन बनकर माँ के ज्वर का उपशमन करती हैं। दक्षिणेश्वर में परमहंस जी द्वारा संसार के बारे में पूछने पर, "मैं आपको संसार में भला क्यों खींचने चली, मैं तो आपको इष्ट प्राप्ति में सहयोग देने आयी हूँ "। उपरोक्त तीन घटनाओं को हम दैवी स्वरूप के 'अभ्यास' रूप में ले सकते हैं।

भक्त नाग महाशय मन-ही-मन सोच रहे थे कि आज माँ के हाथों से ही खाना खाएँगे, अन्तर्यामिनी माँ ने भक्त के भाव को समझते हुए वैसा ही किया। योगीन-माँ बेल-पत्तों से पूजा करती थीं, इस बात को योगीन-माँ के नहीं कहने पर भी माँ सारदा ने जान लिया और उनसे पूछकर उनकी गलत पूजा का परिमार्जन कर दिया। त्रिपुरा सुन्दरी बनकर माँ ने साक्षात् विष्णु के अवतार परमहंसजी से षोड़शी पूजा ग्रहण कर ली।

जयरामबाटी में बैनर्जी परिवार के एक विधवा स्त्री के कान में फोड़ा हो गया, जिसमें से कीड़े निकलते और दुर्गन्ध भी आती थी। इसलिए उनके पास कोई भी नहीं जाता था। माँ ने स्वयं उसके पास जाकर फोड़े को नीम-पत्ती के पानी से साफ किया और कोआलपाड़ा के साधुओं द्वारा उस विधवा-स्त्री के चिकित्सा का प्रबन्ध भी करवाया। इन बातों को स्मरण करते हुए आज भी रामकृष्ण मठ-मिशन के साधुगण सेवाकार्य करते हैं। जो महामाया राधू के रूप में माँ सारदा को व्यावहारिक स्तर पर उतार लाती थी, उसी राधू के जीवन में वैधव्य लिखा हुआ था, किन्तु माँ ने राधू के पति को दीक्षा देकर राधू के वैधव्य को खण्डित कर दिया। इस प्रकार माँ का जीवन सारी दुनिया के लिये एक प्रेरणा स्रोत है।

एक दिन श्रीरामकृष्ण परमहंस लाटू महाराज को कहने लगे, "अरे लाटू, तू जिसका ध्यान कर रहा है, वह नौबतखाने में रोटी बेल रही है।" पुनः एकबार ठाकुर हृदय से कहने लगे, "मैं रुष्ट होऊँ, तो कोई बात नहीं, किन्तु माँ के भीतर जो है, यदि वह फुफकारने लगे, तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि कोई भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। सुन्दर रूप रहने से अशुद्ध मन से देखनेवाले लोगों का अमंगल न हो, इसलिए इस बार जगज्जननी अपने सुन्दर रूप को छिपाकर एक साधारण ग्रामीण महिला के रूप में आयी हैं।

अब उपपत्तियों के बारे में विचार करें। किसी भक्त ने जब माँ को सुनाया कि 'भोजनादि में खर्च अधिक हो रहा

है', तो सुनकर माँ क्रुद्ध होकर नौबतखाने में चली गईं। तब ठाकुर ने रामलाल दादा को यह कहते हुए भेजा, 'अरे रामलाल जल्दी जाकर अपनी चाची को शान्त करो। उसके क्रोध करने से (अपनी ओर उंगली करते हुए) इसका सब कुछ नष्ट हो जाएगा।'' उपपत्ति का अर्थ युक्ति है। यहाँ युक्ति यही है कि जप, ध्यान और सेवादि द्वारा जो जगज्जननी को तुष्ट करता है, वह हमेशा सुखी रहता है। माँ के रुष्ट होने पर साधक को बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा।

अन्त में ज्ञानदायिनी देवीरूपिणी माँ के भाव का उपसंहार के रूप में माँ सारदा देवी के जीवन से हमें संसार के भविष्य का संकेत मिलता है। आध्यात्मिक इतिहास में माँ का जीवन एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना है। एक साधारण ग्रामीण मानवी कन्या जगज्जननी बन गयी, इससे बढ़कर आध्यात्मिक अलौकिकता का दर्शन हम कहाँ करेंगे?

प्राणीमात्र की संतापहारिणी माँ का कोई घर-गृहस्थी नहीं थी, न बाल-बच्चे, परन्तु इस संसार में माँ सारदा को 'माँ माँ' कहकर पुकारनेवालों की संख्या अनन्त है। भक्तों को स्नेहपूर्वक अपना बना लेना माँ का एक विशेष गुण था। एक बार जयरामबाटी में माँ पान लगाने लगीं। कुछ पानों में मसाला एवं सुगन्धित द्रव्य डालती रहीं और कुछ पानों में केवल सुपारी डालकर बिना मसाले का बनाने लगीं। माँ से एक भक्त ने पूछा, आप ऐसा क्यों कर रही हैं? माँ ने कहा, भक्तों को स्नेहपूर्वक अपना बना लेना चाहिए और बिना मसालेवाला पान ठाकुरजी के लिये है, क्योंकि वे तो अपने ही हैं।

एक बार जयरामबाटी में किसी ब्रह्मचारी के बिस्तर पर बिल्ली का प्रसव हो गया। ब्रह्मचारी के आने के पहले ही माँ ने बिस्तर धो दिया। फिर भी कुछ दाग रह गए। ब्रह्मचारी के लौटने पर माँ ने कहा – ''देखो बेटा, बिल्ली को मारना नहीं, वह यहीं रहती है। अब प्रसव के लिए दूसरे के घर कैसे जाएगी? इसलिये उस पर क्रोध नहीं करना।'' इतना ही नहीं माँ तो बिल्ली-कुत्ता एवं अन्य जानवरों को पैर से स्पर्श करने से भी मना करती थीं। इन दो घटनाओं से माँ का मातृत्व केवल मानव मात्र के लिए ही नहीं, अपितु सभी प्राणियों के लिये है। यही अभ्यास के द्वारा दिखाई देता है।

दक्षिणेश्वर में परमहंसजी अपने अन्तरंग शिष्यों का भोजनादि में बहुत ध्यान रखते थे। किसी को रात में कम भोजन करने को कहते थे, किन्तु माँ अन्तरंग शिष्यों को अधिक खिलाती थीं। ठाकुरजी के रोकने पर, 'उनके लिए आपको इतना सोचने की जरूरत नहीं है, अब से उनके भविष्य की देखभाल मैं स्वयं ही करूँगी' – यह उत्तर माँ ने देकर यह दिखाया कि केवल व्यावहारिक जगत में बच्चों की देखभाल ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक उन्नति का दायित्व भी माँ ने अपने ऊपर लिया है। यही मातृत्व की अपूर्वता का संकेत है।

इस प्रसंग में एक कथा है – एक बार की बात है। श्रीराम के पट्टाभिषेक का महोत्सव चल रहा था। सीताजी, लक्ष्मणजी, हनुमानजी और अन्य सभी कार्य में व्यस्त थे। इतने में हनुमानजी को बहुत जोर से भूख लगी और उन्होंने माँ सीताजी से अपनी भूख के बारे में कहा। सीताजी ने तत्काल ही हनुमानजी को खाने के लिये बिठाया और अपने हाथों से ही खाना परोसा। हनुमानजी इतने भूखे थे कि उन्होंने सारा खाना ही खत्म कर दिया, सारे बर्तन खाली हो गये, लेकिन सीताजी ने उनकी भूख की तृप्ति होने तक भोजन कराया। बाद में हनुमानजी ने कहा, 'माताजी क्या सारा भोजन समाप्त हो गया?' सीताजी ने कहा, हनुमान ! तुम इसकी चिन्ता मत करो और ऋद्धि-सिद्धि को बुलाकर सारे बर्तन पुनः भरकर रख दिये।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी एवं ठाकुरजी दुर्जनों से दूर रहते थे और जल्दी किसी को दीक्षा नहीं देते थे। किन्तु माँ किसी भी प्रकार के लोगों को दीक्षा देकर उनका उद्धार करती थीं। माँ के मन में अपने-पराए का भेद-भाव नहीं था। वे चोर अमजद को हाथों से खाना खिलाकर जाति-भेद की सीमा को भी पार कर गईं।

ऐसी ही एक दूसरी घटना है। बेलूड़ मठ में किसी नौकर के चोरी करने पर स्वामीजी ने उसे नौकरी से हटा दिया। वह नौकर सप्रीम कोर्ट के जज रूप में विद्यमान श्रीमाँ के पास रोकर कहने लगा, ''माँ, मैं गरीब हूँ और परिवार बड़ा है। वेतन से खर्चा पूरा नहीं हो रहा था, इसलिये चोरी की।'' नौकर की दैन्यदशा सुनकर सायं दर्शन के लिये आये हुए बाबूराम महाराज के साथ माँ ने उस नौकर को वापस मठ भेज दिया। माँ का आदेश मानकर स्वामीजी ने उस नौकर को पुनः रख लिया। उपरोक्त घटनायें मातृत्व के फल रूप में हैं।

दक्षिणेश्वर के दिनों में माँ स्वयं ठाकुरजी के भोजन की

थाली ले जाया करती थीं। एक बार एक चरित्रहीन महिला ने माँ कहकर माँ के हाथों से थाली लेकर ठाकुरजी को पहुँचा दिया। ठाकुरजी वह भोजन ठीक से नहीं कर सके। बाद में ठाकुरजी के आक्षेप पर माँ ने कहा, मुझे कोई यदि माँ कहकर थाली माँगे, तो मैं उसे ना नहीं कह सकती। सभी भक्तों के लिए कहा कि किसी प्रकार का दुख होने पर मन में यह सोचना, और कोई भले न हो, किन्तु मेरी एक माँ है। इस भाव से भक्त का कल्याण अवश्य होगा। यही माँ के मातृत्त्व की युक्ति है। माता वैष्णव देवी की बात का यहाँ उदाहरण देना उचित होगा –

माता वैष्णव देवी के हाथों मृत्यु आने के लिये भैरव नाथ हमेशा उनसे (माता वैष्णव देवी से) वैरभाव रखते थे और जब उनके कृत्यों की सीमा पार हो गयी, तब माताजी के द्वारपाल हनुमानजी भैरव नाथ को मारने ही वाले थे, तभी माता ने उन्हें रोककर कहा, भैरव की मृत्यु मेरे हाथों लिखी है, क्योंकि भैरव ने वर माँगा था कि "माँ, मैं तो आपके हाथों ही मरना चाहता हूँ।" और माँ शब्द सुनने के कारण माता वैष्णव देवी ने प्रसन्न होकर भैरव को वर दिया था, जो भी भक्त यहाँ मेरा दर्शन करने आयेगा, वह तुम्हारा भी दर्शन करेगा और उसकी यात्रा तुम्हारे दर्शन करने से ही पूरी होगी, अन्यथा पूरी नहीं होगी। इसीलिए वैष्णव देवी का दर्शन करनेवाले भक्त बाबा भैरव नाथ का दर्शन कर अपनी यात्रा को पूर्ण कर स्वयं को धन्य मानते हैं।

अपने शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान न देकर सभी को माँ दीक्षा देती रहीं, जिससे कभी-कभी अपने संगियों से भी उन्हें उलाहना सुनना पड़ता था। यात्रा के दौरान बौद्ध मठों को देखते हुए माँ ने संघस्थ अपनी सन्तानों के रहने-खाने की साधारण व्यवस्था की प्रार्थना की थी।" एक बार एक भक्त ने माँ से पूछा, संघ में साधुओं को घर के नाम से क्यों पुकारते हैं? माँ ने उत्तर दिया, "बेटा संन्यास ले रहा है, यह सुनकर माँ के हृदय में धक्का लगता है, इसलिए बेटे को बेटे के रूप से देखने के लिये घर के नाम से पुकारते हैं।" इस प्रकार मातृत्व का उपसंहार करते हैं।

अब हम माँ के आर्दश पत्नी-भाव को देखते हैं। पवित्र आत्माओं का मिलन प्रजनन की आकांक्षा से नहीं होता, वरन् मानव जाति को दाम्पत्य के सम्बन्ध में एक नवीन आदर्श स्थापित करने के लिये होता है। उसी प्रकार माँ सारदा केवल नाम मात्र ही श्रीरामकृष्ण की पत्नी बनीं, परन्तु वे आदर्श गुरु की आदर्श शिष्या के रूप में ही रहीं। दक्षिणेश्वर के नौबतखाने में शौचादि एवं स्नानघर की कोई भी सुविधा नहीं थी। माँ प्रात:काल ४ बजे ही उठकर शौच-स्नानादि से निवृत्त होकर अपने बाल बाँध लेती थीं और दोपहर में ३-४ बजे वहीं नौबतखाने में जब धूप पड़ती, तब अपने बाल सुखाती थीं। पतिदेव की सेवा में निरत इधर माँ का कभी ध्यान ही नहीं गया। अपने पति के साथ वृक्ष के नीचे रहना भी राजमहल में रहने के समान है, ऐसा वे कहती थीं। दिनभर में जितने भी महात्मा एवं भक्त आते, सभी को मनचाहा भोजन खिलाती थीं, फिर भी कभी उनके चेहरे पर क्रोध या चिड़चिड़ेपन का भाव नहीं आता था। पतिदेव की आज्ञाकारी होते हुए जयरामबाटी में साग-सब्जी लगाकर, बिना नमक का शाक-भात खाकर भी भगवान का नाम लेती रहीं। यह अभ्यास-वर्णन है।

'कितना भी काम हो मेरा मन सदा ठाकुर में ही रहता था।' जैसे अशोक-वाटिका में सीताजी श्रीराम को ही भजती रहीं। इस बात को दृढ़ करते हुए ठाकुर रामलाल दादा से कहने लगे, "तेरी चाची के परदे का छेद तो बढ़ता जा रहा है।" क्योंकि माँ नौबतखाने में रहकर परदे के छेद से ही ठाकुरजी की लीलाएँ देखा करती थीं। एक बार लक्ष्मीनारायण सेठ ने ठाकुरजी को दस हजार रुपए देना चाहा, तो अपनी अनिच्छा प्रकट करते हुए ठाकुर जी ने माँ का मन टटोलना चाहा, तब माँ ने कहा, "आपने जब अस्वीकार किया है, तो मैं कैसे स्वीकार कर सकती हूँ।" और किसी से पैसा लेना याने सर बेचने जैसा ही हुआ। अत: माँ वन्दनीया आदर्श पत्नी थीं।

पानिहाटी उत्सव के समय ठाकुरजी कहने लगे, माँ ने हमारे साथ उत्सव में जाने से मना कर दिया, तो बहुत अच्छा हुआ। वह बड़ी बुद्धिमती है। दोनों यदि साथ जायेंगे, तो लोग कहेंगे हंस-हंसिनी आये हैं और मुख ढँककर हँसने लगेंगे। वस्तुत: माँ एक आदर्श संन्यासिनी और आदर्श पतिव्रता स्त्री भी हैं।

उपरोक्त लक्ष्मीनारायण सेठ के सन्दर्भ में माँ कहती हैं, 'हे ठाकुर, त्याग के लिये ही लोग तुम्हारी श्रद्धा करते हैं, यदि वह मुझमें न दिखे तो, लोगों की श्रद्धा को ठेस पहुँचेगी, अत: त्याग ही पवित्रमय जीवन का आधार है, जहाँ त्याग नहीं वहाँ पवित्रता एवं आदर्श लोप होने लगता है।"

भक्तों का उत्साह बढ़ाते हुए माँ नैवेद्य के बारे में कहती

हैं कि ठाकुरजी अपनी आँखों की ज्योति से नैवेद्य का सार ग्रहण करते हैं। इस प्रकार वे नैवेद्य को शुद्ध करते हैं। एक बार कोआलपाड़ा के चिकित्सालय में कुछ धनी लोग दवा लेने आए। एक ब्रह्मचारी के आक्षेप के उत्तर में माँ ने कहा, जो याचक हैं, वे ही गरीब हैं, उन्हें दवा देते रहना। माँ कहती थीं त्याग के बिना भक्ति नहीं होती। अन्य सभी प्रार्थनाओं को छोड़कर केवल वासनाशून्य मन के लिये प्रार्थना करनी चाहिए। बिना परिश्रम के कुछ भी नहीं होता। परिश्रम का यही फल है।

अन्त में माँ एक आदर्श गुरु हैं। 'मानव-गुरु मन्त्र दे कान में और जगत-गुरु मन्त्र दे प्राण में।' इस कहावत के अनुसार ठाकुरजी ने दक्षिणेश्वर में माँ की जिह्वा पर बीज मन्त्र लिखकर स्वसमान बना लिया। गुरुत्व का उपक्रम षोड़शी पूजा के बाद होने लगा। षोड़शी पूजा के समय माँ समाधिस्थ हुई थीं। ठाकुर ने शरीर-त्याग के बाद भी बार-बार माँ और स्वामी योगानन्दजी को स्वप्न में दर्शन देकर योगानन्द जी को माँ से दीक्षा दिलाई।

एक भक्त ने उद्बोधन में माँ के पास आकर वहाँ से बेलूड़ मठ, दक्षिणेश्वर आदि स्थलों का दर्शन करना चाहा, किन्तु त्रिकालदर्शी माँ ने उसी समय भक्त को बलपूर्वक घर भेज दिया। भक्त का गिड़गिड़ाना भी माँ के आदेश को बदल नहीं पाया। भक्त ने घर लौटकर देखा कि उनके पिताजी बहुत अस्वस्थ हैं। ऐसे सच्चे गुरु ही भक्तों का कल्याण कर सकते हैं। दीक्षा के बारे में माँ कहती थीं, "वे सब अच्छे लोगों को ही दीक्षा देते हैं और मेरे पास चींटियों की जमात भेज देते हैं। फिर भी माँ विवक्षा न करते हुए सभी को आजीवन दीक्षा देती रहीं। एक भक्त को चण्डी के रूप में स्वप्न में दर्शन देकर उसकी पूजा भी ग्रहण की थीं। सौम्यमूर्ति माँ ने जयरामबाटी में अर्धविक्षिप्त हरीश के पीछे पड़ने पर साक्षात् चण्डी बनकर उसकी छाती पर बैठकर उसकी पिटाई की थी। इस अभ्यास में माँ साररदा एक आदर्श जगद्गुरु हैं।

माँ कहती थीं, "मैं सोचती हूँ, शरीर तो एक दिन जायेगा ही, इस भक्त का कुछ भला हो जाय। ऐसा सोचकर वे रुग्णावस्था में भी दीक्षा देती थीं।" गिरीशचन्द्र घोष के जयरामबाटी जाने पर दूधमुँहे बालक का उसकी माँ जैसे देखभाल करती हैं, वैसे ही उनकी सुविधाओं की माँ स्वयं ध्यान रखती थीं। माँ ने अपनी शक्ति के प्रभाव से गिरीश में अटूट श्रद्धा एवं विश्वास भर दिया। गिरीश कहते थे, "मनुष्य के लिये विश्वास करना कठिन है कि भगवान ठीक हम लोगों की तरह हैं और यहाँ साक्षात जगदम्बा ही ग्रामीण महिला के रूप में हमलोगों के सामने हैं।

दिनभर माँ के साथ रहनेवाली योगीन-माँ, माँ सारदा के कार्यकलापों को देखकर मन में ही सन्देह करने लगीं। वास्तव में माँ शिवभाव से जीवों की सेवा करती थीं, योगीन-माँ इसे समझ नहीं पायीं और सन्देह करने लगीं। इसलिए ठाकुर ने योगीन-माँ को एक अद्‌भुत दर्शन देकर माँ पर कभी भी सन्देह नहीं करने को कहा। वह दर्शन ऐसा था – एक बार योगीन-माँ दक्षिणेश्वर में गंगातट पर बैठकर ध्यान कर रही थीं, उसी समय नाड़ियों से लिपटे हुए एक नवजात शिशु का शव गंगाजी में दिखाते हुए ठाकुरजी ने योगिन-माँ से पूछा, "क्या इस शव के स्पर्श से गंगाजी अपवित्र होती हैं, कभी नहीं हो सकती। वैसे ही माँ पर कभी सन्देह नहीं करना।" इस दर्शन से योगिन-माँ का भ्रम दूर हो गया।

फल के रूप में माँ के उपदेशों का स्मरण करना उचित होगा। 'क्या चौबीस घण्टे जप-ध्यान किया जा सकता है? तब बेटा, कर्म करते रहना, उससे तेरा तन-मन शुद्ध होगा।' एक प्रसंग में माँ ने एक भक्त महिला से कहा – यदि शान्ति चाहती हो, तो किसी के दोष मत देखना और यदि दोष देखना ही हो, तो अपने दोषों को देखना। नामरूपी बीज कालान्तर में भाव-भक्ति एवं प्रेम की उत्पत्ति करता है।

माँ के मुख से अभयवाणी निकली कि जिन्होंने मुझसे दीक्षा ली है, उन्हें फिर से इस जगत में आना नहीं होगा, माँ कहती थीं, सेवाश्रमों में ठाकुर प्रत्यक्ष विराजमान हैं एवं उनकी प्रेरणा से ही सभी काम हो रहे है। इन युक्तियों के द्वारा श्रेष्ठ गुरुत्व भाव में उपपत्ति की झलक है।

उपसंहार – एक भक्त ने अपने मन की मलिनावस्था माँ से कही, तब माँ उसका हौसला बढ़ाते हुए बोलीं, "समय व्यर्थ न कर जब समय मिले जप करते रहना सब ठीक हो जायेगा।" जीव की पाप करने की जितनी क्षमता है, भगवान की क्षमा करने की शक्ति उससे अधिक है। यही बात माँ के सभी भावों से प्रस्फुटित होती है। ये ही हमारी अनन्त रूपिणी अनन्त गुणवती माँ सारदा हैं ! ○○○

काव्य-लहरी

प्रभु मेरे जीवन को देना

विजयकुमार श्रीवास्तव, सीतापुर (उ.प्र.)

प्रभु मेरे जीवन को देना, प्राण सुधा का वह प्याला,
जिसे लगाते हाथ, अकिंचन का धुल जाये मन काला ।
मेरी तो औकात नहीं है, तुझपे समर्पित हो जाऊँ,
किन्तु चाह है रो-रो तेरे, चरणों में ही सो जाऊँ ।।१।।

मेरे कर्मों की गति से है, बना हुआ मकड़ी-जाला,
निकल सकूँ कैसे इससे, पग-पग पर है चुभता भाला ।
तेरी करुणा की छाया में, चाह यही मैं बस जाऊँ,
जीवन के सब राग भुलाकर, बस तेरा ही गुण गाऊँ ।।२।।

बाँट रहा तू जग को बैठा, दिव्य घूँट की प्रिय हाला,
उसे छू सकूँ सच्चे मन से, तेरी ही जो मधुशाला ।
राग छिड़े पीकर चरणों के अमृत यदि जो तर जाऊँ,
बहुत राग गाये इस घर में, अब मन है उस घर जाऊँ।।३।।

बार-बार की फरियादें यदि, खिझा रही हो तेरा मन,
तो मुझको दे-दे प्रभु कोई, सूख रहा जो उजड़ा वन ।
सींच-सींच नयनों के जल से कर्तव्यों हित मर जाऊँ,
तो भी प्रभु पा तेरी आभा, हर कलिका पर इठलाऊँ ।।४।।

सारे जग में तेरी ही है, चमक रही पावन सत्ता,
बिन उसके है पवन मौन सी, हिल न सके कोई पत्ता ।
मेरा जीवन पृथक नहीं है, तुझसे जो मैं इतराऊँ ,
तुझे छोड़ अस्तित्व किसी का कहाँ मिले मैं अपनाऊँ ।।५।।

राग-द्वेष की पगडंडी पर, मिल न सके कोई मन्थन,
थके हुए तन-मन को कर दे, आलिंगन करके कुन्दन ।
प्रभु मेरे जीवन को देना, प्राण सुधा का वह प्याला,
जिसे लगाते हाथ, अकिंचन का धुल जाये मन काला ।।६।।

अहम् ब्रह्मास्मि

काशी प्रसाद खेरिया, कोलकाता

अपलक
प्रत्येक पल
देखा था
तुम्हें ही तो
महामेघ गर्जन में,
अटा में,
घटाओं में,
सागर की लहरों में,
क्षितिज के कोणार्ध में,
अनन्त अन्तरिक्ष में ।
क्या, तुम्हीं नहीं
फूलों के रंग में,
माटी की
सोंधी-सी गंध में,
उत्पत्ति-उत्सर्ग
संसर्ग-दिशान्तर में
कण-कण में
असंख्य वेश धारे मैं
तुममें तल्लीन हुआ,
कब-कब
लीन नहीं हुआ
मेरे विराट !
मैं विराटिका ही सही,
हूँ तो तुम्हारी
महानिधि का एक अंश।

तभी सब संशय मिटेंगे

मुक्तेश मोहन, लखनऊ

मैं कौन हूँ ?
यह नहीं जानता ।
विस्तृत धरा,
अन्तहीन दिशाएँ,
अन्तहीन पथ,
अन्तहीन यात्रा,
कौन कर रहा है?
निराकार या साकार,
निर्विकार या विकारी,
निर्विशेष या सविशेष,
अविनाशी या नाशवान,
निर्गुण या सगुण,
चेतन या अचेतन,
प्रकाश या अन्धकार ।
एक ही तो हो सकता हूँ ।
तब, यह द्वैत का भ्रम क्यों?
क्या यह मिटेगा?
यदि हाँ, तो कब?
यदि नहीं, तो क्यों?
हे प्रभु !
तुम्ही सक्षम हो,
तुम्हें ही ज्ञात है ।
मुझे दृढ़ विश्वास है कि
कभी तो तुम अवश्य मिलोगे ।
तभी समस्त संशय मिटेंगे ।

वर्तमान परिवेश में छात्रों का कौशल विकास और सामाजिक दायित्व

डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति
प्रा. हिन्दी साहित्य, रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर

वर्तमान में हम शिक्षा को रोजगारमूलक बनाने के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त करा रहे हैं। आज कौशलसम्पन्न व्यक्ति लगभग सभी क्षेत्रों में निर्माण करना हमारी प्राथमिकताओं में से एक है। हमारी शिक्षा-पद्धति का मुख्य उद्देश्य अधिक-से-अधिक कौशल निर्माण करना है, जो समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। इसलिये प्रायोगिक तौर-तरीकों पर अधिक बल देना किसी भी शैक्षणिक संस्थान की प्राथमिकताओं में से पहले है। दूसरा शैक्षणिक संस्थानों में अध्ययनरत प्रत्येक छात्र की केन्द्रीभूत दृष्टि अधिक-से-अधिक अंकों, प्रतिशतों से उत्तीर्ण होना है। यह अंकों, प्रतिशत की लालसा समाज में रह रहे छात्रों को सामाजिक दायित्वों का कितना बोध करा पाती है, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि उनके मस्तिष्क के पन्नों में मानवीय-मूल्य द्वारा निर्मित सुनहरे शब्दों की संख्या काले तकनीकी शब्दों से बहुत कम है और उनकी संख्या बहुत तेजी से घट रही है, यह चिन्ता का विषय है। इसके मूल में जो तत्त्व कार्य कर रहा है, वह है वर्तमान परिदृश्य में भौतिक संसाधनों को अधिक-से-अधिक जीवनोपयोगी बनाना प्रत्येक छात्र का लक्ष्य हो गया है। यहाँ तक की स्थिति कुछ सीमा तक ठीक कही जा सकती है। लेकिन इसका दूसरा सामाजिक संरचना के लिये बेहद घातक पक्ष यह है कि इन छात्रों का उपयोगितावादी दृष्टिकोण उन्हें व्यक्तिवादी दायरे तक सीमित कर रहा है। मात्र स्वयं की उन्नति प्रमुख ध्येय होना चिन्तनीय है। हम सब यह स्वीकारते हैं कि इसका विपरीत प्रभाव समाज पर पड़ रहा है। यह केवल हम तक सीमित नहीं, बल्कि आनेवाले छात्रों की चिन्तन क्षमता पर भी इसका दूषित प्रभाव पड़ रहा है। परिणामस्वरूप वह हर व्यक्ति जो उपाधियाँ प्राप्त कर रहा है, उसमें आधे से अधिक अपनी निजी उन्नति के लिए कौशल का उपयोग कर रहे हैं। अर्थात् हमने कौशल निर्माण तो किया, लेकिन इसके साथ उसके उपयोगितावादी दृष्टिकोण को धन अर्जित करने के एक सीमित और व्यक्तिवादी पथ पर अग्रसर कर किया। यही कारण है कि अब वह मानवीय दायरे से बाहर जाकर धनोपार्जन अपनी सारी उपलब्धियों में प्राथमिकता से स्वीकार करने लगा है। समाज के लिये यह बहुत बेहद खतरनाक है।

इस तरह हम देखें, तो छात्रों में कौशल निर्माण जीविकोपार्जन के लिये प्रमुख पक्ष और व्यक्ति-निर्माण (व्यक्ति से तात्पर्य सामाजिक सुसंस्कृत आध्यात्मिक व्यक्ति से) गौण क्यों हो गया? आखिरकार यह विडम्बना कैसे उत्पन्न हुई? इसके क्या कारण थे अथवा हैं और इसके लिए कौन-कौन से कारक जिम्मेदार हैं आदि अनेक प्रश्न हमारे सामने उपस्थित हैं।

हम विचार करते हैं, तो पाते हैं कि प्रत्येक देश का संविधान मनुष्य की स्वतन्त्रता सुनिश्चित करता है। इसमें बोलने-सुनने, रहने, कार्य करने की स्वतन्त्रता है।

बोलना सचमुच एक अच्छा कौशल है, परन्तु हम जो बोल रहे हैं उसका उद्देश्य क्या है? मानव कल्याण के लिये, व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए या फिर दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के लिए? यदि इनमें से मानव कल्याण के लिये बोला जा रहा है, तो यह बोलने की स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्ति को मिलनी ही चाहिए। दूसरा यदि व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये बोलने की स्वतन्त्रता है, तो इसे दो उपभागों में बाँटा जा सकता है – १. किसी दूसरे को पीड़ा पहुँचाए बिना बोलना (जिसके अन्तर्गत उपासना, सद्‌वचन आदि को लिया जा सकता है) और २. पीड़ा पहुँचाकर बोलना। वस्तुतः पहले से ही व्यक्ति के अन्दर निहित आत्मशक्ति जागृत करने का प्रमुख बिन्दु आरम्भ होता है। जिसका परवर्ती उपयोग मानव कल्याण के रूप में प्रभावशील होता है। दूसरा, पीड़ा पहुँचाकर व्यक्तिगत स्वार्थ प्राप्त करना बोलने की स्वतन्त्रता का गलत अर्थ सम्प्रेषित करता है। यदि वक्ता अपने द्वारा कथित पीड़ादायी शब्दों के लिए पश्चाताप करता है, तो उसमें सुधार की कुछ सम्भावनाएँ रहती हैं और आवश्यक सुधार के बाद उसे बोलने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। यदि बोलना मात्र दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के उद्देश्य से ही है, तो यह उस व्यक्ति की निकृष्टता होगी, मानव मात्र ही नहीं अपितु पूरे जगत के लिये। ऐसा बोलना स्वतन्त्रता का अपमान होगा। अतः ऐसी स्वतन्त्रता नहीं दी जानी चाहिए, वह चाहे किसी भी धर्माधिकारी या जीवनोपयोगी वस्तुओं का निर्माणकर्ता या अविष्कारकर्ता ही क्यों न हो। यद्यपि यह एक क्षणिक आवेग का ही परिणाम होता है, जो किसी को पीड़ा देने के लिए अपनी पवित्रात्मा की ध्वनि को दूषित करता है।

सुनना जीवन के विकास के लिये अति आवश्यक है।

मान लें हम किसी मार्ग से जा रहे हैं। वहाँ पर ध्वनियों की अधिकता असह्य अनुभव होती है। ऐसा क्यों? क्योंकि हम उस कोलाहलमय वातावरण में अपने मन-मस्तिष्क को सार्थक ध्वनियों के लिये एकाग्र नहीं कर पाते और असहज हो जाते हैं। सांसारिक जीवन भी ऐसा ही कोलाहल भरा है। क्या हम कभी अपनी आवाज स्वयं सुन पाते हैं? यदि हम ऐसा कर पाते, तो हम किसी भी व्यक्ति द्वारा उच्चरित ध्वनियों, शब्दों का सार्थक अर्थ समझ जाते। क्यों? क्योंकि हमने अपने मस्तिष्क को सुनने के लिये तैयार और एकाग्र रखा है। सुनना केवल ध्वनि संकेतों को सुनना नहीं, बल्कि ऐसे शब्द जो हमें प्रफुल्लित करते हों। इसी की पृष्ठभूमि से हम स्वयं ऐसे वचन बोल पाएँगे। वास्तव में जगत में ऐसे शब्द ही गूँजते हैं। एक सुदृढ़ समाज के लिये इस तरह का सुनना विकसित माना जा सकता है।

सामान्यत: रहने का अर्थ यह निकाला जाता है कि सभी भौतिक सुख-सुविधाओं से युक्त जीवन-शैली। वर्तमान में छात्रों का इसी ओर आकर्षण बढ़ा है। प्रकृति से सम्बन्ध लगभग समाप्त-सा हो गया है। ऋतुओं को समझने की क्षमता लोगों में नहीं रह गई है और वर्तमान उपभोग मनुष्य के लिए केन्द्रीभूत तत्त्व हो गया है। यदि निरन्तर ऐसा किसी भी व्यक्ति या समाज द्वारा सोचा या उपयोग किया जाता है, तो वह अपनी चेतना को सीमित रख रहा है। वातानुकूलित कक्षों में रहना वास्तव में रहना नहीं है, रहना तो वह है, जब प्रकृति के सान्निध्य में व्यक्ति रहे। हम आसपास ऐसा वातावरण निर्मित करें, जो स्वास्थ्य और व्यक्तित्व विकास के लिये सहायक बन सके। प्रत्येक व्यक्ति को शुद्ध वायु की आवश्यकता स्वस्थ शरीर के लिये जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी उसका कर्तव्य है कि वह अपने आसपास के परिवेश को शुद्ध रखे। इसी से जुड़ी एक दूसरी बात है, नियमित दिनचर्या के अनुरूप रहना ही छात्र के व्यक्तित्व विकास का महत्वपूर्ण अंग है। विशेष रूप से छात्रों को नियमित जीवन-शैली के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

कार्य सभी करते हैं, लेकिन कार्य कैसे करें? कसाई, किसान और भक्त तीनों कार्य करते हैं। लेकिन इन तीनों के कार्यों के महत्त्व और उद्देश्य में बहुत अन्तर है। कसाई अपने जीवन के लिए केवल भौतिक शरीर को ध्यान में रखकर कार्य करता है। उसे अगले जन्म या अन्य प्राणी, जिसे वह मौत के घाट उतार रहा है, के बारे में नहीं सोचता। वह अपनी संवेदना केवल अपने उदरपूर्ति तक ही समझता है। किसान केवल अपना ही पेट नहीं भरता, बल्कि वह अपने परिश्रम से अपना और समाज का पेट भरता है। भक्त जो किसी दूसरे को थोड़ी भी पीड़ा न पहुँचाकर आध्यात्मिक पथ की ओर निरन्तर अग्रसर होता रहता है। किसान का कार्य कल्याणकारी और श्रेष्ठ है। वह दूसरे के भोजन की व्यवस्था अपने कड़े श्रम और सच्चाई से करता है। वह अपने अतिरिक्त दूसरे के भोजन का दायित्व भी पूरी निष्ठा से निभाता है।

यदि छात्रों के सीखनेवाले कौशल में कठोर परिश्रम और सच्चाई जोड़ दें, तो वे समाज का कल्याण कर सकते हैं।

समाज के अनेकों प्रश्न हैं, क्या यह शिक्षित वर्ग व्यक्तिगत स्तर से हटकर समष्टिहित चिन्तन के लिये समय निकाल पाएगा? क्या वह अपने दायित्वों का निर्वाह समाजहित में कर पाएगा? क्या वह अपने मानवीय गुणों का सामंजस्य अपने कौशल के साथ कर पाएगा? अधिकांश बुद्धिजीवियों का मानना है कि यदि छात्र अपने व्यक्तित्व का ठीक से विकास कर लें, तो देश, विश्व का विकास होगा। यदि ऐसा हुआ, तो कौशल का उपयोग मानव कल्याण के लिये सार्थक हो सकेगा।

वर्तमान समाज के आधार पर इन महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार किया जा सकता है –

१. वर्तमान शिक्षा पद्धति का कुछ वर्षों तक के लिये लक्ष्य निर्धारित किया जाय। २. कौशल विकास के साथ-साथ व्यक्ति में भावनात्मक सम्बन्ध का सामंजस्य बैठाने के प्रयास किए जाएँ। ३. हम सबका कर्तव्य है कि शिक्षित व्यक्ति को उसके मानवीय दायित्वों का भलि-भाँति बोध हो, ताकि वे अपने कौशल का समुचित और सही उपयोग मानवहित में कर सकें। ४. व्यक्तिगत सीमा से ऊपर उठकर मानवता के लिए कार्य करना और इस हेतु दूसरों को प्रेरित करने की क्षमता विकसित करना। ५. मन, मस्तिष्क का उचित तालमेल और चरित्र-निर्माण में समाज के लिये उसका योगदान। ६. आध्यात्मिक उन्नति के लिए निरन्तर प्रयत्न करना। ७. सम्पूर्ण विश्व को एक मानव परिवार समझते हुए विश्वकल्याण की भावना का विकास और अन्य को इस हेतु प्रेरित करते रहना। ८. नि:स्वार्थ भाव से निराश्रितों की सेवा करना और अपने मानव-धर्म को समझकर सदैव उद्यत रहना। ९. विपरीत परिस्थितियों में अपने आप पर नियन्त्रण रखना और आवश्यकतानुसार इनका समाधान ढूँढने के लिये तत्कालीन संसाधनों का उपयोग करना। १०. कौशल से प्राप्त ज्ञान का समाज के लिये समुचित उपयोग करना। ○○○

श्रीरामकृष्ण-वचनामृत में कबीर-वाणी

श्रीरामकृष्ण वचनामृत में एक प्रश्न अनेकों बार पूछा गया है कि ईश्वर साकार हैं अथवा निराकार? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीरामकृष्ण देव बहुधा कबीर जी के दोहे का उल्लेख करते थे, 'कबीर कहते थे –

निर्गुण तो है पिता हमारा और सगुण महतारी ।
काको निन्दौं काको बन्दौं दोनों पल्ला भारी ।।

इसी को आगे समझाते हुए श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, 'कोई साकार कहता है और कोई निराकार। मैं कहता हूँ, जिसका विश्वास साकार पर है, वह साकार का ही चिन्तन करे और जिसका विश्वास निराकार पर है, वह निराकार का चिन्तन करे।...बात यह है कि चाहे जिस भाव का आश्रय करो, विश्वास पक्का होना चाहिए। चाहे साकार में विश्वास करो, चाहे निराकार में, परन्तु वह ठीक-ठीक होना चाहिए। ... भक्त को जो स्वरूप प्यारा है, उसी रूप से वे दर्शन देते हैं।

श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद स्वामीजी और उनके गुरुभाई वराहनगर मठ में दिन-रात तपस्या में मग्न रहते थे। एकबार स्वामीजी ने अपने गुरुभाइयों के सामने भावविह्वल होकर कबीर का यह भजन गाया था –

प्रभु मैं गुलाम, मैं गुलाम, मैं गुलाम तेरा ।
तू दीवान, तू दीवान, तू दीवान मेरा ।।
दो रोटी एक लँगोटी, तेरे पास मैं पाया ।
भगति भाव दे और, नाम तेरा गाया ।।
तू दीवान मेहरबान, नाम तेरा वार्या ।
दास कबीर शरण में आया, चरण लागे तरैया।।

भगिनी निवेदिता और रानी पद्मिनी

भगिनी निवेदिता स्वामी विवेकानन्द की शिष्या थीं। उन्होंने स्वामीजी के आह्वान पर अपना पूरा जीवन भारत के लिए समर्पित कर दिया। वे इतिहास बड़ी ही तन्मयता से पढ़ातीं। जब वे अपनी छात्राओं के समक्ष किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व का वर्णन करतीं, तो वे उस विषय से इतनी एकरूप हो जातीं कि कुछ क्षणों के लिए यह भी भूल जातीं कि वे कक्षा में पढ़ा रही हैं। उन्हें अपनी छात्राओं को साथ लेकर भारतीय उज्ज्वल इतिहास की साक्षी – पुरी, भुवनेश्वर, चितौड़, उज्जैन आदि स्थानों के भ्रमण करने की बहुत इच्छा थी। किन्तु उनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी। लेकिन उन्होंने जिन स्थानों को प्रत्यक्ष देखा था, उनका वे इतना सजीव वर्णन करतीं कि छात्राओं को लगता मानो वे उस स्थान को अपनी आँखें से देख रही हों। जब वे राजपूत-स्त्रियों की वीरता की कहानियाँ छात्राओं को सुनातीं, तो कहतीं – 'तुम सभी को उन राजपूत-स्त्रियों के समान वीर और साहसी बनना है। ओह ! भारत की कन्याएँ कितनी महान हैं ! तुम्हें भी क्षत्रिय-नारियों की तरह महान बनने की शपथ लेनी चाहिए।'' एक दिन चितौड़ का वर्णन करते समय उन्होंने कहा – 'मैं उस दिन चितौड़ के पहाड़ पर चढ़कर घुटनों के बल बैठकर बहुत देर तक आँखें बन्दकर रानी पद्मिनी के विचारों में खो गयी, ताकि उनके सौन्दर्य को, उनकी वीरता को अपने नेत्रों के समक्ष ला सकूँ।'' ऐसा कहकर वे सच में ही घुटनों के बल बैठ गयीं, शान्तचित्त होकर आँखें बन्द कर लीं तथा हाथों को मोड़कर पद्मिनी के विचारों में विभोर होकर आगे की कथा सुनाने लगीं। उन्होंने कहा – ''मैं अपनी आँखों के सामने रानी पद्मिनी को जौहर के अग्नि कुण्ड के निकट खड़ी देख रही हूँ। उस अन्तिम क्षण में उनके मन में क्या विचार आए होंगे, मैं उसका विचार कर रही हूँ।'' उनकी छात्राएँ राजपूत-नारी पद्मिनी की जौहर-गाथा बड़े ध्यान से विस्मित होकर सुन रही थीं। यह देखकर निवेदिता बहुत प्रसन्न थीं कि ये कल्पनाशील, भावनाशील तथा बुद्धिमती छात्राएँ, उनको जो भी बताया-समझाया जाता है, उसे शीघ्र ही ग्रहण कर लेती हैं। ○○○

(पृष्ठ २६७ का शेष भाग)

अंठोजी पढ़ना आरम्भ किया, उस समय मैंने अंठोजी में कहानी की एक पुस्तक पढ़ी थी। उसमें एक कर्तव्यनिष्ठ बालक का वर्णन था। उसने काम करके जो कुछ कमाया था, उसका कुछ हिस्सा उसने अपनी वृद्ध माता को दे दिया था। उस बालक की प्रशंसा में उस पुस्तक के तीन-चार पृष्ठ भर दिये गये थे। परन्तु इसमें विशेष क्या है? उस कहानी की नीति-शिक्षा को कोई भी हिन्दू बालक नहीं समझ सकेगा ! अब जब मैं 'प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने लिए' के पाश्चात्य आदर्श के विषय में सुनता हूँ, तो उस कथा का मर्म समझ पाता हूँ। यहाँ, इस देश में ऐसे भी अनेक लोग हैं, जो सब कुछ अपने लिए ही रख लेते हैं – फिर उनके पिता, माता, स्त्री और बच्चों की चाहे जैसी दशा क्यों न हो, परवाह नहीं करते। एक गृहस्थ का ऐसा आदर्श तो कदापि और कहीं भी नहीं होना चाहिए। (३/३६-३७)। ○○○

विवेकानन्द रथ का छत्तीसगढ़ प्रवास

एक रथ-यात्री की डायरी से

सोमवार, दिनांक २ फरवरी २०१४

इन्दिरा गाँधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर में रथ ११.३० बजे पहुँचा और १.३० बजे तक रहा। वहाँ के अधिष्ठाता छात्रकल्याण डॉ. डी. ए. सरनायक और डीन ओ. पी. कश्यप जी ने अपने स्टाफ और छात्र-छात्राओं के साथ रथ में स्वामीजी की मूर्ति पर माला पहनाकर और फूल चढ़ाकर स्वागत किया। उसके बाद विवेकानन्द सभागार में सभा हुई। सभा में स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने बच्चों को संबोधित किया। उसके बाद रथ अगले कॉलेज के लिये प्रस्थान किया।

एम.एम.सी.टी, रायपुर में रथ २ बजे पहुँचा और ५ बजे तक रहा। आप लोग सोचेंगे कि ३ घंटे क्या कर रहे थे। अरे भाई, सबको भोजन कराना है, नहीं तो ड्राइवर और सारे सहयोगी हड़ताल कर देंगे, तो यह अभियान पूरा कैसे होगा ! कॉलेज की डाइरेक्टर सुश्री शमिता चक्रवर्ती ने हमसे एक दिन पहले पूछा कि आप आयेंगे, तो वह भोजन का समय है, भोजन कहाँ कीजियेगा। हमने कहा कि जहाँ मिल जायेगा, वहाँ कर लेंगे। उन्होंने सहर्ष सभी यात्री दलों को अपने कॉलेज में भोजन का निमन्त्रण दिया। अत: सबसे पहले उन्होंने सभी यात्री दलों को बड़ा ही स्वादिष्ट वहाँ भोजन कराया। यह अन्तिम कार्यक्रम है। स्वामी सत्यरूपानन्द, मोहन महाराज, ब्रह्मचारी बोधमय चैतन्य, भिलाई से हिमाचल मढ़रिया, वीरेन्द्र वर्मा, बी, एल. सोनकर जी, और हमारी रथ-यात्री कुल २२ लोग थे। इसलिये आनन्द और बढ़ गया था।

एम.एम.सी.टी. में शमिता चक्रवर्ती और उनके सहयोगी अध्यापकों एवं छात्र-छात्राओं के द्वारा स्वामीजी का भव्य स्वागत किया गया। उसके बाद सभा ३ बजे आरम्भ हुयी। स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन पर प्रकाश डाला। कॉलेज के बच्चों ने स्वामीजी पर नाटक किया। उसके बाद रथ लखौली के लिये प्रस्थान किया।

विवेकानन्द विद्यामंदिर, लखौली में रथ ५.४५ में पहुँचा और ६.१५ तक रहा। वहाँ मुख्य मार्ग पर आकर विद्यालय के बच्चों, शिक्षिकाओं और ग्रामवासियों ने रथ का स्वागत किया। सभी बड़े प्रसन्न थे। रथ-यात्री दल के ब्रह्मचारी नन्दकुमार उस विद्यालय के संस्थापक सचिव हैं और उनके निर्देशन में ही रथ का सुन्दर स्वागत हुआ। रथ पर से स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने बच्चों को संबोधित किया। उसके बाद रथ आगे बढ़ चला।

आरंग-भ्रमण – लखौली से ८ किलोमीटर दूर आरंग छोटा-मोटा शहर टाइप का है। वहाँ बस स्टैंड में जन-दर्शन के लिये रथ को ४५ मिनट रखा गया। ७ बजे वहाँ से प्रस्थान किये। रास्ते में आते समय आरंग और लखौली के बीच में रसनी प्रेट्रोल पम्प पर कुछ देर रुककर हमलोग सीधे रायपुर आश्रम आ गये।

प्रेस मीडिया का हार्दिक योगदान

रायपुर में हुए कार्यक्रमों को स्थानीय महत्वपूर्ण सभी समाचार पत्रों – नवभारत, हरिभूमि, दैनिक भास्कर, नई दुनिया, अमृत संदेश, पत्रिका, छत्तीसगढ़, दबंग दुनिया आदि सबने बड़े व्यापक रूप से रथ-भ्रमण के प्रतिदिन का समाचार प्रकाशित किया।

दूरदर्शन का योगदान

दूरदर्शन केन्द्र, रायपुर ने विवेकानन्द रथ की सूचना प्रकाशित की। अन्य कई स्थानीय चैनलों ने भी अपने चैनलों के माध्यम से रायपुर-रथ-भ्रमण की सूचनायें प्रसारित कीं।

रायपुर से रथ का बिलासपुर हेतु प्रस्थान

सोमवार, दिनांक ३ फरवरी २०१४

३ फरवरी, २०१४ को स्वामी विवेकानन्द जी का रथ बिलासपुर के लिये प्रस्थान किया। रथ को लेने के लिये बिलासपुर-आश्रम के व्यवस्थापक स्वामी एकात्मानन्द जी अपने एक सहयोगी स्वामीजी के साथ २ फरवरी को ही रायपुर आश्रम में गये थे। प्रात: ७ बजे से रथ प्रस्थान किया और १०.१५ बजे बिलासपुर पहुँच गया। रायपुर से रथ के साथ थे स्वामी प्रपत्त्यानन्द, ब्रह्मचारी बोधमय चैतन्य, ब्रह्मचारी नन्दकुमार और पुस्तक विक्रय-केन्द्र के प्रभारी और ड्राइवर।

विवेकानन्द जयन्ती समारोह रायपुर – २०१५

१७ जनवरी, शनिवार को अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी, जिसका विषय था — "**इस सदन की राय में आवासिक गुरुकुल शिक्षा पद्धति व्यक्तित्व विकास के लिए सर्वश्रेष्ठ है।**" इसमें पक्ष में बोलते हुए शासकीय विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर के छात्र ऐश्वर्य पुरोहित ने प्रथम और पक्ष में ही आयुर्वेदिक कॉलेज, रायपुर की छात्रा नीलिमा पाण्डेय ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता मिताश्री मित्रा, विभागाध्यक्ष मानवविज्ञान आधुनिकशाला, रविशंकर विश्वविद्यालय, रायुपुर ने की।

१८ जनवरी, रविवार को '**इस सदन की राय में देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए कानून के साथ-साथ चरित्र-निर्माण भी परम आवश्यक है।**' विषय पर अन्तर्विद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी। इसमें पक्ष में बोलते हुए विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के नागेन्द्र खुटेल और विपक्ष में बोलते हुए जवाहर नवोदय विद्यालय, रायपुर के विशाल दो छात्रों ने प्रथम पुरस्कार और विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के हेमंत बारले ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता मुकुन्द हम्बर्डे जी ने की।

१९ जनवरी, सोमवार को अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी। इसमें जे. आर. दानी गर्ल्स स्कूल, रायपुर की छात्रा कु. सम्भाविनी पाल ने प्रथम स्थान प्राप्त किया और विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के हेमराज मांडवी ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता रविशंकर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रवीन्द्र ब्रह्म ने की।

२० जनवरी, मंगलवार को अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन था। विषय था — "**राष्ट्रीय जागरण के उद्गाता स्वामी विवेकानन्द**"। इस प्रतियोगिता में विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के छात्र खिलेन्द्र त्रिवेन्द्र ने प्रथम और उसी विद्यालय के संदीप पाटले तथा होली क्रॉस सीनीयर सेकेन्ड्री स्कूल, रायपुर की छात्रा कुमारी मृगनयनी पाण्डेय ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता प्रो. रक्षा अध्ययन साइंस कॉलेज, रायपुर के डॉ. गिरीश कान्त पाण्डेय ने की।

२१ जनवरी, बुधवार को 'अन्तर्माध्यमिक शाला विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' थी, जिसका विषय था – '**भारतीय समाज के आदर्श स्वामी विवेकानन्द**'। इसमें प्रथम पुरस्कार विजेता रेडियंट वे स्कूल, रायपुर की कुमारी अस्मिता चन्द्रवंशी रहीं, उसी कॉलेज की छात्रा कुमारी साक्षी देशमुख और राजकुमार कॉलेज, रायपुर की छात्रा कुमारी अंगजा खंकरियाल इन दोनों ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता एन.आर.डी.ए (छ.ग.) के महाप्रबन्धक श्री विनोद कुमार लाल जी ने की।

२२ जनवरी, गुरुवार को 'अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता' आयोजित थी, जिसका विषय, '**इस सदन की राय में जीवन में सफलता के लिए अभिभावकों की अपेक्षा शिक्षक अधिक उत्तरदायी हैं**' – था। इसमें शिवोम विद्यापीठ, रायपुर की छात्रा कुमारी परिधि शर्मा ने विपक्ष में प्रथम पुरस्कार और कृष्णा पब्लिक स्कूल, रायपुर की कुमारी अपर्णा तिवारी ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता शासकी नवीन कन्या महाविद्यालय, रायपुर की प्राचार्या डॉ. अरुणा पल्टा ने की।

२३ जनवरी, शुक्रवार को 'अन्तर्प्राथमिक पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता' थी। इसमें द रेडियंट वे स्कूल, रायपुर के छात्र सारविल सिंह ने प्रथम और श्रीरामकृष्ण विद्यालय, रायपुर के छात्र सरफराज कुरैशी ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त अन्य प्रतियोगी सुष्मिता ताम्रकार, ऋषभ सोनकर, तनिशा देवांगन आदि कई बच्चों ने भी स्वामीजी के बड़े प्रेरक उद्धरण प्रस्तुत किये। अन्त में सभी प्रतिभागियों को स्वामी विवेकानन्द की चित्रमय जीवनी पुस्तक और चॉकलेट दिये गये। इस सत्र की अध्यक्षता शासकीय अभियांत्रिक महाविद्यालय, रायपुर के पूर्व प्राचार्य डॉ आर. पी. सुखेजा जी ने की।

सभी प्रतियोगिता-सत्रों का आयोजन एवं संचालन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने की।

विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन और पुरस्कार वितरण

२५ जनवरी, रविवार २०१५ को सन्ध्या ६ बजे 'विवेकानन्द जयन्ती समारोह' का उद्घाटन और पुरस्कार वितरण समारोह माननीय प्रो. शिव कुमार पाण्डेय, कुलपति, पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर के कर-कमलों से सम्पन्न हुआ। सभा की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव श्रीमत स्वामी सत्यरूपानन्द जी

महाराज ने की। छात्रों को सम्बोधित करते हुए श्रीपाण्डेय जी ने कहा कि मैं भाग्यशाली हूँ कि भारत देश में मेरा जन्म हुआ, जहाँ स्वामी विवेकानन्द ने जन्म लिया। मैं भाग्यशाली हूँ कि रायपुर में रहा, जहाँ स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने जीवन के दो वर्ष यहाँ बिताए। मैं जब रायपुर में छात्र था, तब श्रीरामकिंकर महाराज, स्वामी आत्मानन्द जी और अन्य कार्यक्रमों में यहाँ आकर भाग लेता था। आज मैं जो कुछ भी हूँ, जिस जगह पर हूँ, वहाँ तक पहुँचाने में इस आश्रम का ही योगदान है।''

उसके बाद पुरस्कार वितरण और छात्रावास के बच्चों के 'हम होंगे कामयाब' गीत से सभा सम्पन्न हई। उद्घाटन कार्यक्रम का स्वागत भाषण और मंच संचालन स्वामी निर्विकारानन्द जी ने तथा धन्यवाद ज्ञापन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।

रामायण प्रवचन

स्वामी विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में सोमवार, २६ जनवरी, २०१५ से ३ फरवरी तक श्रीरामकथा के विख्यात संगीतमय प्रवचनकर्ता मानस मर्मज्ञ स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती 'श्रीराजेश रामायणीजी' ने आश्रम-प्रांगण के भव्य पांडाल में 'श्रीभरत चरित' पर बड़ा ही मार्मिक प्रवचन दिया। कभी तो रामवन-गमन के वियोग में भरतजी की भावविभोर दशा का चरित्र-चित्रण कर भक्तों को रुला दिया, तो कभी मिथिला की गाली सुनाकर हँसा दिया। बड़ी विलक्षण कथा थी भरत-रामप्रेम की !

मन्दिर में भजनांजलि

२ फरवरी को प्रात: ९.३० बजे स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती जी ने रामकृष्ण मन्दिर में भजन प्रस्तुत किए।

राहत कार्य

२७ दिसम्बर, २०१४ को रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के द्वारा विवेकानन्द विद्यामन्दिर, लखौली में आरंग ब्लाक के बोरिद, रसनी, बैहार, लखौली, गुजरा, सोनपैरी, और देवदा गाँवों के ११० गरीबों को स्वामी सत्यरूपानन्द जी के कर-कमलों से कम्बल वितरित किए गए।

श्रीरामकृष्ण परमहंस की जयन्ती मनाई गई

२० फरवरी, २०१५ को आश्रम प्रांगण में श्रीरामकृष्ण देव की जयन्ती मनाई गयी। श्रीरामकृष्ण देव मन्दिर में प्रात:काल से विशेष पूजा, भजन-कीर्तन और १०.३० बजे हवन, व्याख्यान और भोग हुआ। सभी भक्तों के एक साथ श्रीरामकृष्ण के नामोच्चारण से मन्दिर गूँज उठा। शाम को मन्दिर में श्रीरामकृष्णनाम संकीर्तन और भजन हुए।

स्वामी विवेकानन्द के आधुनिक भारत के नव-निर्माण में पण्डित मदनमोहन मालवीय का योगदान पर व्याख्यान आयोजित हुए

१८ नवम्बर, २०१४ को शासकीय दानवीर तुलाराम महाविद्यालय, उतई, दुर्ग में महामना मालवीय मिशन, रायपुर के तत्त्वावधान में सभा आयोजित हुई, जिसमें मैट्स विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. एस. के. सिंह और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने बच्चों को सम्बोधित किया।

१९ नवम्बर, २०१४ को १२ बजे कम्पटेक महाविद्यालय, धमतरी और २.३० बजे शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, धमतरी में डॉ. एस. के. सिंह और स्वामी प्रपत्त्यान्द ने बच्चों को सम्बोधित किया।

२० नवम्बर, २०१४ को दिशा कॉलेज, रायपुर में १२.३० बजे दिशा कॉलेज, कोटा, रायपुर में सभा आयोजित हुई, जिसमें अध्यक्ष थे रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी। उन्होंने कहा कि हम महापुरुषों से क्या सीख सकते हैं, यह हमें सोचना चाहिए। विवेकानन्द और मालवीय जी दोनों महापुरुष समकालीन थे और दोनों ने देश के लिए कार्य किया। स्वामी विवेकानन्द संन्यासी थे और मालवीयजी गृहस्थ थे। हमारी प्राचीन संस्कृति में सुप्त भावों को जगाने की सामर्थ्य है। संसार के सभी कार्यों को करते हुए अपने व्यक्तिगत जीवन में व्यक्ति धर्म का पालन कर सकता है, इसे मालवीय जी ने अपने जीवन में सन्ध्या-वन्दन, पूजा-पाठ, सेवा आदि करके दिखाया। वे चरित्रवान थे और उनका सारा जीवन सनातन धर्म और देश के लिए समर्पित रहा।'' अन्य दो वक्ताओं डॉ. एस. के. सिंह और स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने भी विवेकानन्द और मालवीय जी के जीवन पर प्रकाश डाला।

२७ नवम्बर, २०१४ को शासकीय बद्रीप्रसाद कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, आरंग (छत्तीगढ़) में सभा आयोजित हुई, जिसमें डॉ. एस. के सिंह, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, डॉ. बी. एल. सोनकर, और वहाँ के प्राचार्य डॉ एस.के.शर्मा..ने बच्चों को सम्बोधित किया। संचालन श्रीमती कुसुम चन्द्राकर ने किया।

२४ जनवरी, २०१५ को रविशंकर विश्वविद्यालय में मालवीय मिशन के तत्त्वावधान में मालवीयजी द्वारा स्थापित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का स्थापनोत्सव मनाया गया। विभिन्न कॉलेजों में हुई निबन्ध प्रतियोगताओं के पुरस्कार वितरण किये गये। सभा में पद्मश्री प्राप्त और स्वतन्त्रता सेनानी ८७ वर्षीय श्री महादेव प्रसाद पाण्डेय जी ने मालवीय जी और बी.एच.यू से जुड़ी अनेकों स्मृतियाँ सुनाई। अधिवक्ता श्री हरिश्चन्द त्रिपाठी, अम्बिकापुर, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, डॉ. एस. के. सिंह जी ने सभा को सम्बोधित किया। ○○○